ISSN : 2348-2656
सौलहवां अंक

पूसा सुरभि

अक्तूबर, 2020–मार्च, 2021

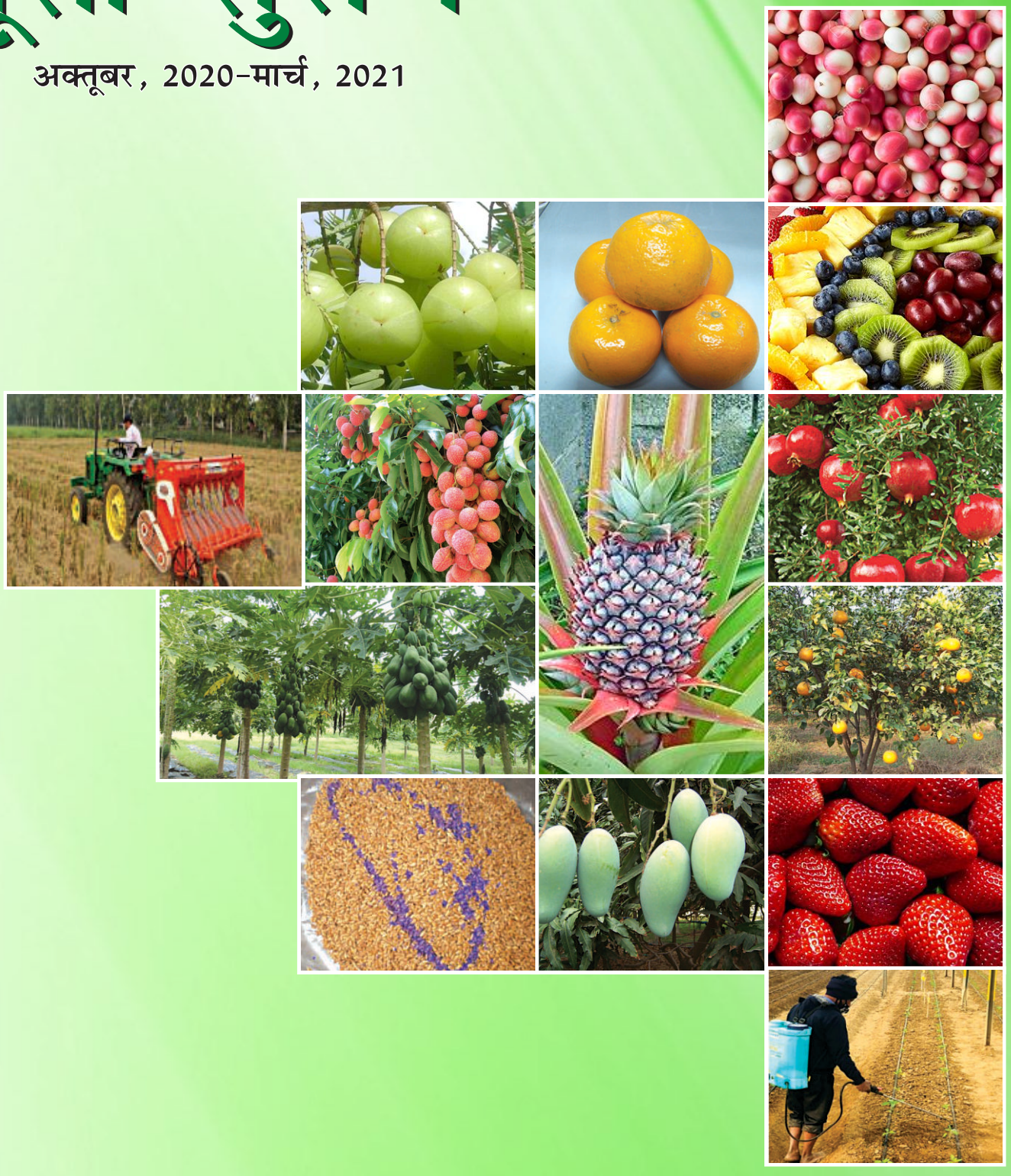

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली–110012

ISSN : 2348-2656

सौलहवां अंक

पूसा सुरभि

अक्टूबर, 2020 - मार्च, 2021

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली-110012

पूसा सुरभि
अक्टूबर, 2020 - मार्च, 2021

संरक्षक एवं अध्यक्ष
डॉ. अशोक कुमार सिंह
निदेशक

संपादक
केशव देव
उप निदेशक (राजभाषा)

संपादन मंडल
डॉ. दिनेश कुमार, प्रधान वैज्ञानिक, सस्य विज्ञान संभाग
राजेन्द्र शर्मा, मुख्य तकनीकी अधिकारी, कृषि ज्ञान प्रबंधन इकाई
सुनीता, सहायक निदेशक (राजभाषा)

संपर्क सूत्र
उप निदेशक (राजभाषा)
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012
दूरभाष: 011-25842451

ISSN - 2348-2656

आवश्यक सूचना
इस अंक में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों/आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं।

मुद्रण: दिसंबर, 2021
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली के लिए हिंदी अनुभाग द्वारा प्रकाशित एवं
मै. एम एस प्रिंटर्स, सी-108/1 बैक साइड नारायणा इंडस्ट्रीयल एरिया, फेस-1, नई दिल्ली-110028
फोनः 7838075335, ईमेलः msprinter1991@gmail.com

आमुख

भारतीय कृषि अनेक प्रकार की उपलब्धियों को अपने अंदर समेटती हुई निरंतर प्रगति की ओर अग्रसर है। देश में खाद्यान पदार्थों के पर्याप्त भंडार मौजूद हैं, जो खाद्य सुरक्षा के प्रमुख द्योतक हैं। देश में किसानों की कृषि से होने वाली आमदनी बढाने के निरंतर प्रयत्न जारी हैं। कृषकों की खेती-बाड़ी से होने वाली आय में वृद्धि हो इसके लिए कृषि लागत में कमी लाने की आवश्यकता है, ताकि किसानों को उनके कृषि-उत्पादों का सही मूल्य मिल सके। कृषि उत्पादन के प्रमुख संसाधनों में भूमि, श्रम, पूंजी और प्रबंधन इत्यादि शामिल होते हैं। सतत विकास एवं दीर्घकालिक कृषि उत्पादन के लिए उक्त प्राकृतिक संसाधनों का अनुकूलतम एवं उपयुक्त उपयोग किया जाना आवश्यक हैं। जिससे कि इनकी गुणवता प्रभावित न हो। साथ ही कृषि उत्पादन में प्राकृतिक एवं कृत्रिम संसाधनों का सही सयोजन से भी कृषि लागत में कमी लाई जा सकती है। जहां तक संस्थान का इसमें योगदान का का प्रश्न है, तो संस्थान इसके लिए उपलब्ध संसाधनों की दक्षता-वृद्धि के लिए निरंतर तकनीकियों का विकास कर रहा है।

इस संस्थान ने कृषि के विभिन्न क्षेत्रों में इस तरह की अनेक तकनीकियों का विकास किया है जो जल, मृदा, श्रम और कृषि के अन्य निवेशों की दक्षता बढाने के साथ-साथ प्राकृतिक संसाधनों को भी संरक्षित रखती हैं। उदाहरण के लिए संस्थान द्वारा विकसित बासमती धान की किस्में पोषक तत्वों का सामान्य प्रयोग करके 5.0 - 6.0 टन/हे. दाने की उपज देती हैं और इसका बाजार भाव भी बहुत अच्छा मिलता है, जिससे कृषकों की अच्छी आमदनी होती है। इस तरह की अनेक तकनीकियां संस्थान ने विकसित की हैं जिनका उपयोग करके कृषक अपनी आय में वृद्धि कर सकते हैं।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान की तकनीकियों को किसानों व आमजन तक पहुंचाने में संघ की राजभाषा हिंदी की महत्वपूर्ण भूमिका है। संस्थान अपने अनुसंधानों को राजभाषा हिंदी के माध्यम से किसान व जन सामान्य को अनेक उपयोगी साहित्य लगातार उपलब्ध करवा रहा है। इसी क्रम में संस्थान की गृह पत्रिका **"पूसा सुरभि"** का **सोलहवां अंक** आपके समक्ष है। इसमें उपलब्ध सामग्री से किसान व जन सामान्य निश्चित ही लाभ उठाएंगे। मैं पत्रिका के इस सफल प्रकाशन के लिए श्री केशव देव, उप निदेशक (राजभाषा) एवं सुश्री सुनीता, सहायक निदेशक (राजभाषा) को बधाई देता हूं। पत्रिका को आकर्षक बनाने के लिए संपादन मंडल के सदस्य डॉ दिनेश कुमार, प्रधान वैज्ञानिक, एवं श्री राजेंद्र शर्मा, मुख्य तकनीकी अधिकारी को भी बधाई देता हूं, जिन्होंने पत्रिका के संपादन व प्रकाशन में अपने बहुमूल्य सुझाव तथा सेवाएं दी हैं। साथ ही इस अंक में सम्मिलित लेखों के लेखकों के प्रति भी आभार, जिनके द्वारा उपलब्ध कराई गई सामग्री से यह प्रकाशन सफलतापूर्वक संपन्न हुआ है। आशा है कि यह प्रकाशन बहुपयोगी साबित होगा।

(अशोक कुमार सिंह)
निदेशक

संपादकीय

भारत एक बहुभाषी देश है और अनेकता में एकता इसकी अनुपम परंपरा रही है। वास्तव में सांस्कृतिक दृष्टि से सारा भारत सदैव एक ही रहा है। इस विशाल देश में जहां अलग-अलग राज्यों में भिन्न-भिन्न भाषाएं बोली जाती हैं और जहां लोगों के रीति-रीवाजों, खान-पान, पहनावे और रहन-सहन तक में भिन्नता हो वहां ऐसे बहुभाषा-भाषी देश में संपर्क भाषा का विशेष महत्त्व होता है। संपर्क भाषा ही एक ऐसी कड़ी है जो एक छोर से दूसरे छोर के लोगों को जोड़ने और उन्हें एक दूसरे के समीप लाने का काम करती है। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने संपर्क भाषा के प्रयोग क्षेत्र को तीन स्तरों पर विभाजित किया है: एक तो वह भाषा जो एक राज्य से दूसरे राज्य के राजकीय पत्र-व्यवहार में काम आए। दूसरे वह भाषा जो केंद्र और राज्यों के बीच पत्र-व्यवहारों का माध्यम हो और तीसरे वह भाषा जिसका प्रयोग एक क्षेत्र/प्रदेश का व्यक्ति दूसरे क्षेत्र/प्रदेश के व्यक्ति से अपने निजी कामों में करे। ऐसी कोई और भाषा नहीं केवल देश की राजभाषा हिंदी ही है, जो कश्मीर से कन्याकुमारी तक देश को एक सूत्र में बांधकर संपर्क भाषा की भूमिका निभाती आ रही है।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान में भी ऐसी मिली जुली संस्कृति की झलक देखने को मिलती है। संस्थान में देश के विभिन्न प्रान्तों के अधिकारी/कर्मचारी कार्यरत हैं, जिनके आपसी संवाद की भाषा अधिकांशत: हिंदी ही होती है। साथ ही संस्थान द्वारा किसानों व जन-सामान्य के लिए किए जा रहे अनुसंधान कार्य उन तक पहुंचाने में संघ की राजभाषा हिंदी में प्रकाशित संस्थान की लोकप्रिय गृह पत्रिका **पूसा सुरभि** अपनी भूमिका बखूबी निभाती आ रही है। इसी क्रम में पत्रिका का यह **सोलहवां अंक** आपके समक्ष है। इसके तकनीकी और विविधा खंड में विभिन्न विषयों से संबंधित यथा- भारत में सघन बागवानी, खाद्य परिरक्षण एवं पैकिंग में नैनो टेक्नोलौजी का उपयोग, छोटा सा बीजोपचार: खुशियां अपार, आत्मनिर्भर भारत हेतु कृषि क्षेत्र में मददगार एवं धान में लगने वाले प्रमुख रोग एवं उनका प्रबंधन इत्यादि ज्ञानवर्धक लेख प्रकाशित हैं। साथ ही कोविड-19 काल के दृष्टिगत कृषि कार्यों के मध्य कोरोना विषाणु से बचाव की महत्वपूर्ण जानकारी भी उपलब्ध कराई गई है। इसके अलावा पत्रिका के राजभाषा खंड में संस्थान और इसके क्षेत्रीय केंद्रों की राजभाषा गतिविधियों को भी प्रकाशित किया गया है।

पूसा सुरभि पत्रिका के निरंतर प्रकाशन की अनुमति और राजभाषा कार्यान्वयन के लिए उत्कृष्ट मार्गदर्शन देने के लिए हम संस्थान के निदेशक एवं अध्यक्ष, राजभाषा कार्यान्वयन समिति के प्रति अत्यंत आभारी हैं। पत्रिका की सामग्री संपादित करने के लिए संपादन मंडल के कर्मठ सदस्य डॉ दिनेश कुमार, प्रधान वैज्ञानिक, श्री राजेंद्र शर्मा, मुख्य तकनीकी अधिकारी एवं सुश्री सुनीता सहायक निदेशक (राजभाषा) के प्रति भी हम कृतज्ञता व्यक्त करते हैं, जिन्होंने अपना बहुमूल्य समय प्रदान कर सामग्री का सूक्ष्म रूप से संपादन कार्य का निष्पादन किया। पत्रिका के इस अंक के लिए सामग्री उपलब्ध कराने वाले सभी वैज्ञानिकों, तकनीकी एवं अन्य कार्मिकों के प्रति भी हम आभारी हैं। जिनके अथक सहयोग से यह प्रकाशन सफल हुआ।

यह अंक आपको कैसा लगा? के बारे में हमें आपके बहुमूल्य विचारों की अपेक्षा रहेगी। अंत में पूसा सुरभि से जुड़े सभी लोगों के प्रति पुन: आभार।

(केशव देव)
उप निदेशक (राजभाषा)

विषय सूची

आमुख (iii)

संपादकीय (v)

तकनीकी खंड...

1. भारत में फलों की सघन बागवानी 3
   - *संजय कुमार सिंह, कन्हैया सिंह, जय प्रकाश, विश्व बंधु पटेल एवं अमित कुमार गोस्वामी*
2. खाद्य परिरक्षण एवं पैकिंग में नैनोटेक्नोलॉजी का उपयोग 9
   - *राम रोशन शर्मा*
3. संरक्षण कृषि के तहत मक्का की व्यावसायिक खेती: फसल विविधीकरण का विकल्प 12
   - *संदीप कुमार, विनोद कुमार सिंह, सूर्य प्रकाश यादव, अनिल कुमार वर्मा रिषभ कुमार दीदावत, प्रवीण कुमार उपाध्याय एवं कपिला शेखावत*
4. अदरक की फसल के हानिकारक सूत्रकृमियों एवं प्रबंधन 15
   - *राशिद परवेज़ एवं उमा राव*
5. ग्रीनहाउस में शिमला मिर्च का संरक्षित उत्पादन 18
   - *हेमलता भारती, मामचंद सिंह, प्रवीण कुमार सिंह एवं इंद्रमणि*
6. नैनो प्रौद्योगिकी (नैनो कणों) की कृषि में संभावनाएं 23
   - *सनील कुमार, हनमुान सिंह जाटव एवं कैलाश चन्द्र*
7. छोटा सा बीजोपचार : खुशियां अपार 26
   - *अतुल कुमार, देवेन्द्र कुमार यादव, श्यामल कुमार चक्रवर्ती, ज्ञान प्रकाश मिश्र, एवं शैलेन्द्र कुमार झा*
8. जैविक खेती के नुस्खें 31
   - *रणबीर सिंह, शिवाधार मिश्र एवं वैभव बालियान*
9. संरक्षित खेती और हाइड्रोपोनिक्स प्रौद्योगिकी से उच्च मूल्य बागवानी फसलों का उत्पादन 38
   - *मुर्तुजा हसन एवं इंद्रमणि*
10. पीड़कनाशियों का सुरक्षित प्रयोग: क्या करें और क्या न करें 41
    - *प्रिया सैनी, सुमन गुप्ता एवं अमन कुमार*

विविधा...

1. आत्मनिर्भर भारत हेतु कृषि क्षेत्र मददगार 47
   - *रणबीर सिंह, शिवाधर मिश्र एवं राज सिंह*
2. धान में लगने वाले प्रमुख रोग एवं उनका प्रबंधन 53
   - *अतुल कुमार, बिष्णु माया, एवं ज्ञान प्रकाश मिश्र,*
3. बीज उत्पादन में रोजगार के अवसर 58
   - *रणबीर सिंह एवं नीलामानि राठी*

4. कृषि कार्यों के मध्य कोरोना विषाणु (कोविड-19) से बचाव 61
- दिनेश कुमार, इंद्रमणि एवं अनुपमा सिंह
5. खाद्य वनस्पति तेलों से प्राकृतिक विटामिन-ई निष्कर्षण के लिए कुशल कार्यप्रणाली 64
- विनुथा टी, नविता बंसल एवं शैली प्रवीण
6. पर्यावरण पर नॉवेल कोरोना वायरस (कोविड-19) का अप्रत्यक्ष प्रभाव 66
- निवेदिता एवं राम कुमार शर्मा
7. परि-नगरीय क्षेत्रों हेतु उपयुक्त फल 76
- राम रोशन शर्मा
8. पादप जनित प्राकृतिक रंग - संभावनाएं एवं सीमाएं 82
- अल्का जोशी, कुमार नन्द लाल, तिप्पेस्वा मी बी, श्रुति सेठी एवं आर आर शर्मा

राजभाषा खड़...

1. भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान राजभाषा प्रगति रिपोर्ट (2020-21) 89

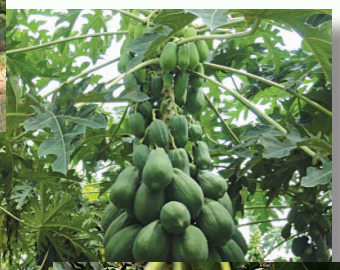

तकनीकी खंड...

भारत में फलों की सघन बागवानी

संजय कुमार सिंह, कन्हैया सिंह, जय प्रकाश, विश्व बंधु पटेल एवं अमित कुमार गोस्वामी

फल एवं औद्यानिकी प्रौद्योगिकी संभाग

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012

भारत फलोत्पादन में अग्रणी देश है, परंतु अन्य फल उत्पादक देशों विशेषकर विकसित पश्चिमी राष्ट्रों, चीन, इज़राइल आदि की तुलना में भारत में फलों की कम औसत उत्पादकता और फल गुणवता चिंता के विषय हैं। भारत में निम्न फल उत्पादकता का एक मुख्य कारण कम सघनता वाले परंपरागत बागों का बहुतायत में पाया जाना है। पश्चिमी देशों में शीतोष्ण फलों जैसे सेब, चेरी और आड़ू में सघन बागवानी द्वारा उच्च उत्पादकता और सार्थक परिणाम प्राप्त हुए हैं। भारत में भी विभिन्न अनुसंधान संस्थानों द्वारा किए गए प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि सघन बागवानी प्रति इकाई क्षेत्रफल उत्पादकता बढ़ाने में सक्षम है एवं प्रति व्यक्ति घटते जोत के समय में एक कारगर विकल्प है।

विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय चुनौतियों को दृष्टिगत रखते हुए परंपरागत खेती में कुछ अहम बदलाव लाने की आवश्यकता है। खाद्य सुरक्षा की बदलती अवधारणा, स्वास्थ्य के प्रति सचेत उपभोक्ता, बढ़ती हुई जनसंख्या, शहरी विकास, औद्योगीकरण, भूमि एवं अन्य संसाधनों की बढ़ती हुई लागत तथा फलों की बढ़ती हुई मांग जैसे कारकों को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि फलों की खेती को बढ़ावा दिया जाए। वैश्विक जलवायु परिवर्तन को ध्यान में रखकर पर्यावरणीय सुरक्षा सुनिश्चित कर मृदा क्षरण और जल अपव्यय रोकने हेतु फलों की खेती में संसाधन संरक्षण प्रौद्योगिकियों का वृहत स्तर पर प्रयोग आवश्यक हो गया है। इस संदर्भ में सघन बागवानी प्रौद्योगिकी एक उत्तम विकल्प प्रस्तुत करती है। इस प्रौद्योगिकी के व्यावसायीकरण द्वारा भारत में फलोत्पादन को एक अधिकाधिक लाभ वाले उद्यम में परिवर्तित किया जा सकता है।

सघन बागवानी का तात्पर्य प्रति इकाई क्षेत्र में अधिक से अधिक फलवृक्षों को समायोजित करके उपलब्ध संसाधनों का इष्टतम प्रयोग करते हुए अधिकाधिक उत्पादन और लाभ प्राप्त करने से है। सघन बागवानी का प्रारंभ सर्वप्रथम यूरोप में 1960 के दशक में सेब में प्रारंभ हुआ। सेब में सघन बागवानी की शुरुआत का श्रेय इंग्लैण्ड में विकसित मैलिंग-मर्टन अनुक्रम के बौने मूलवृन्तों को दिया जाता है। यूरोप में आरंभिक सफलता के बाद धीरे-धीरे सघन बागवानी का प्रसार दूसरे देशों में हुआ। वर्तमान में यूरोप, संयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड आदि देशों में शीतोष्ण फलों में सघन बागवानी बड़े स्तर पर अपनाई जा रही है।

उपलब्ध संसाधनों जैसे भूमि, जल, सौर ऊर्जा और उर्वरकों का न्याय संगत उपयोग करते हुए फल उत्पादन में नियमित और टिकाऊ लाभ प्राप्त करना सघन बागवानी के मुख्य उद्देश्य है। सघन बागवानी के मुख्य लाभ नियमित और शीघ्र फलन, अधिक उपज और उन्नत प्रक्षेत्र प्रबंधन है। फल फसलों में सघन बागवानी हेतु अनेक रणनीतियों का विकास किया गया है। इनमें कम दूरी पर पौध रोपण, आनुवंशिक रूप से बौनी प्रजातियों और बौने मूलवृन्तों का प्रयोग, उचित कटाई-छ्टाई और पादप वृद्धि नियामकों जैसे कलटार (पैक्लोब्यूट्राजाल) का प्रयोग मुख्य है। वर्षों के सतत अनुसंधान के फलस्वरूप फलों में वृक्ष स्थापत्य और पादप कार्यिकी में अर्जित ज्ञान, अनेक फलों में बौनी प्रजातियों व मूलवृन्तों का विकास और प्रभावशाली पादप वृद्धि अवरोधक जैसे कलटार के सुगम उपलब्धता ने सघन बागवानी उद्यम को नयी सार्थकता और स्वीकार्यता प्रदान की है।

शीतोष्ण फलों में सघन बागवानी प्रौद्योगिकी की क्रमागत उन्नति का प्रभाव उष्ण-कटिबंधीय और उपोष्ण फलों पर भी पड़ा है। ऐसा देखा गया है कि शीतोष्ण फलों में विकसित सघन बागवानी तकनीकियों में कुछ संशोधन करके उन्हें उष्ण-कटिबंधीय और उपोष्ण फल फसलों के

अनुकूल बनाया जा सकता है। जहां तक उष्ण- कटिबंधीय और उपोष्ण फलों की बात है इनमें लघु अवधि वाली फसलें जैसे केला, अन्नानास और पपीता में सघन बागवानी अधिक प्रायोगिक प्रतीत होती है। लघु अवधि वाली इन फसलों का लाभ यह है कि इनके पौध अंतरण में की गई किसी भी गलती को अधिक वितीय नुकसान के बिना शीघ्र ही सुधारा जा सकता है। दीर्धाविधि वाली बहुवर्षीय फसलों के साथ समस्या यह है कि उनकी सघन बागवानी के लिए उपलब्ध सूचना और विधियाँ पर्याप्त नहीं हैं। इन फलों में सघन बागवानी अनुसंधान की दिशा में प्रयास तेज करने की आवश्यकता है। दीर्धाविधि वाली बहुवर्षीय फसलों में सघन बागवानी के लिए शीघ्रता में की गई कोई भी अनुशंसा हानिकारक होने के साथ ही उत्पादक प्रक्षेत्रों पर नकारात्मक प्रभाव छोड़ सकती है। अत: इन फलों में सघन बागवानी संबंधी कोई भी संस्तुति दीर्धाविधि के प्रयोगों पर आधारित होनी चाहिए।

भारत में विभिन्न कृषि अनुसंधान संस्थान और कृषि विश्वविद्यालय सघन बागवानी तकनीकियों के विकास में प्रयासरत हैं। कई फलों जैसे आम, नींबू वर्गीय फल, केला, पपीता, अनन्नास, किन्नों, अमरूद और सेब में उपज संवर्धन और संसाधन संरक्षण के लिए सघन बागवानी पद्धति की क्षमता सफलतापूर्वक प्रदर्शित की जा चुकी है। भारत में विकसित की गई विभिन्न सघन बागवानी तकनीकियों का संक्षिप्त विवरण यहां फसल वार प्रस्तुत किया जा रहा है।

आम

भारत में आम की परंपरागत खेती में पौधों को सामान्यत: 8-10 मीटर की दूरी पर लगाते हैं। अधिक अंतरण के कारण उपलब्ध संसाधनो का समुचित उपयोग नहीं हो पाता जो निम्न उत्पादकता का एक मुख्य कारण है। आम में सघन बागवानी के व्यापक अवसर और इस संकल्पना की प्रायोगिकता बौनी और नियमित फलन देने वाली प्रजातियों जैसे आम्रपाली, सिंधु एवं अरुणिका के विकास के कारण संभव हुई है। आम्रपाली प्रजाति में पौध रोपण त्रिकोणीय विधि से 2.5 मी.X2.5 मी की दूरी पर करते हैं। इस प्रकार प्रति हेक्टेयर 1600 पौधे समायोजित किए जाते हैं। यथासमय, आम्रपाली के सघन बागों की स्थापना स्व:स्थाने (इन सीटू) विधि से करनी चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि खेत में यथा-स्थान मूलवृन्तों को रोपना चाहिए और उन पर कलम बांधनी चाहिए। इस विधि से समय और संसाधनों की बचत होती है। पौधों को झाड़ीनुमा रखने के लिए प्रारंभिक दो वर्षों तक शीघ्र कालिका की तुड़ाई आवश्यक है। रोपण के तीन वर्ष बाद पौधों में फलन शुरू हो जाती है। आम्रपाली के सघन बागों में अत्याधिक फलों के कारण उनका आकार समरूप नहीं होता है। इस समस्या को दूर करने हेतु फल आने के तुरंत बाद फलों का विरलीकरण आवश्यक है। बाग स्थापना के 12 वर्ष पश्चात अत्याधिक पादप वृद्धि के कारण फल उपज घटने लगती है। इस समस्या को दूर करने हेतु फल तुड़ाई के उपरांत शाखाओं की प्रति वर्ष छंटाई आवश्यक है।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा विकसित क़िस्मों जैसे पूसा अरुणिमा, पूसा सूर्या, पूसा प्रतिभा, पूसा श्रेष्ठ, पूसा पीताम्बर, पूसा लालिमा, पूसा दीपशिखा और पूसा मनोहरि के पौधे भी मध्यम ओज वाले होते हैं और निकट रोपण (6 मीx 6 मी) द्वारा सघन बागवानी हेतु उपयुक्त हैं। इन प्रजातियों के फल उच्च गुणवता वाले होते हैं। इन प्रजातियों के फल निर्यात बाजार के लिए संस्तुत किए जाते हैं। सिंधु प्रजाति के पौधे भी सघन बागवानी के लिए उपयुक्त हैं। इन्हें 7.5 मीx 5.0 मी की दूरी पर लगाकर प्रति हेक्टेयर 400 पौधे समायोजित किए जा सकते हैं। दशहरी किस्म भी सघन बागवानी में 3.0 मीx 2.5 मी (1333 पौधे/है.) की दूरी पर लगायी जा सकती है। सघन बागवानी में दशहरी किस्म के पौधों को 10 वर्ष की आयु तक सामान्य रूप से बढ़ने देते हैं। ग्यारहवें वर्ष में 50 प्रतिशत और बारहवें वर्ष मी अन्य 25 प्रतिशत शाखाओं की डीहार्निंग कर देते हैं। डीहार्निंग, गोविन्द वल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय पन्तनगर, द्वारा विकसित कटाई-छंटाई की एक विशेष तकनीक है जिसमें फल तुड़ाई के तुरंत बाद शाखाओं की कटाई छंटाई करते हैं जिससे पौधों की ऊंचाई और विस्तार लगभग आधा घट जाता है। दशहरी की सघन बागवानी में लगभग 18 टन/है. की उपज प्राप्त होती है।

आम में सघन बागवानी के लिए बौने मूलवृंतों के प्रयोग की भी संस्तुति की जाती है। उदाहरण के रूप में बहुभ्रूणीय मूलवृंत वेलाईकोलम्बन और ओलूर अलफ़ांजों किस्म में वृक्ष आकार घटाने में सक्षम है। आम में वृक्ष आकार नियंत्रित करने और नियमित फलन लेने हेतु पादप वृद्धि अवरोधक कलटार के प्रयोग की संस्तुति की जाती है। कलटार में पैक्लोब्यूट्राजाल सक्रिय, अवयक होता है। यह पादप वृद्धि हार्मोन जिबरेलिन के जैव-संश्लेषण को बाधित कर आम के वृक्षों की वृद्धि नियंत्रित करता है जिससे नियमित फलन प्राप्त होती है। वर्तमान में महाराष्ट्र के अलफ़ांजों उत्पादक कलटार का व्यावसायिक प्रयोग कर रहे हैं।

केला

केले में सघन बागवानी व्यावसायिक रूप से काफी लोकप्रिय हो रही है। केले में सघन बागवानी उत्पादकता बढ़ाने, श्रमिक लागत घटाने और संसाधन उपयोग दक्षता बढ़ाने में सक्षम है। भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु द्वारा विकसित तकनीकी में रोबस्टा/ ड्वार्फ कैवेन्डिस प्रजाति के पौधों को 1.5 मी x 1.5 मी की दूरी पर रोपकर प्रति हेक्टेयर 4,444 की पौध सघनता प्राप्त की जा सकती है। केले में सघन बागवानी से प्रति हेक्टेयर 100-120 टन फल उपज प्राप्त होती है। केले में सघन बागवानी का मुख्य लाभ उच्च उत्पादकता और उर्वरक प्रयोग में मितव्ययता है। परंतु इस तथ्य को घ्यान में रखना चाहिए कि केले में सघन बागवानी के सफल क्रियान्वयन हेतु टपकदार सिंचाई सुविधा की उपलब्धता आवश्यक है। केले की सघन बागवानी में मुख्य समस्या सूर्य के प्रकाश की सीमित उपलब्धता है जो पेडी फसल में पुष्पन, फसल अवधि, परिपक्वता और प्रदर्शन को प्रभावित करती है।

किन्नों

किन्नों एक नींबू वर्गीय फल है। भारत में नींबू वर्गीय फलों के बाग प्राय: कम सघनता वाले (250-350 पौधे/ है॰) होते हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में एक दशक के सतत शोध ने किन्नों में सघन बागवानी का मार्ग प्रशस्त किया है। किन्नों में सघन बागवानी बौने मूलवृन्तों के प्रयोग पर आधारित है। ट्रायर सिट्रेंज (3000 पौधे/है॰), कर्णा खट्टा (1780 पौधे/है॰) और सोह सरकार

(1110 पौधे/हे॰) मूलवृन्तों के प्रयोग से किन्नों में सघन बागवानी संभव है। किन्नों के सघन बागों में फल लगना 3 वर्ष पश्चात आरंभ हो जाता है। फल सामान्य आकार के, अत्यधिक रसदार और उच्च गुणवता वाले होते हैं। किन्नों के सघन बाग परंपरागत सामान्य बागों की तुलना में लगभग दोगुना लाभ देते हैं। किन्नों में विकसित सघन बागवानी तकनीकी का अपना अलग महत्व है क्योंकि यह छोटी जोत के किसानों द्वारा भी सफलतापूर्वक अपनाई जा सकती है।

अमरूद

अमरूद में सघन बागवानी बौने मूलवृन्तो के प्रयोग, रोपाई की विशेष विधियों और कटाई छटाई की विशेष तकनीकियों पर आधारित है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा सघन बागवानी हेतु एक प्रभावशाली बौने मूलवृंत पूसा सृजन का विकास किया गया है। यह मूलवृंत इलाहाबाद सफेदा प्रजाति की सघन बागवानी के लिए उपयुक्त है। इस मूलवृंत के प्रयोग से वृक्ष आकार 50 प्रतिशत तक घट जाता है। इस प्रकार इलाहाबाद सफेदा के पौधों को 3 मी x 3 मी की दूरी पर रोपकर प्रति हेक्टेयर 1,111 पौधे समायोजित किए जा सकते हैं। इलाहाबाद सफेदा प्रजाति के पौधे पूसा सृजन मूलवृंत पर अधिक मीठे, अधिक विटामिन सी युक्त और मृदु बीजों वाले फल देते हैं। पूसा सृजन मूलवृंत अमरूद की उकठा बीमारी के प्रति भी सहिष्णु है। अमरूद में सघन बागवानी हेतु बाड़ पंक्ति पद्धति की संस्तुति की जाती है। इस पद्धति में पौध अंतरण 6 मी x 6 मी के स्थान पर 6 मी x 2 मी होता है। परंपरागत पद्धति की तुलना में बाड़ पंक्ति पद्धति में प्रति इकाई क्षेत्र लगभग दोगुनी उपज प्राप्त होती है। इस पद्धति में पौधों को वांछित आकार में रखने हेतु नियमित कटाई छंटाई की आवश्यकता होती है। केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान लखनऊ द्वारा विकसित टापिंग और हेजिंग तकनीकियां अमरूद में वृक्ष आकार नियंत्रित करने में सक्षम हैं। इस संस्थान द्वारा विकसित की गई अति सघन बागवानी पद्धति (मीडो बाग पद्धति) में प्रति हेक्टेयर अमरूद के 5000 पौधे (2 मी॰x 1 मी॰) समायोजित किए जा सकते हैं।

पपीता

पपीते में सघन बागवानी की संकल्पना बौनी किस्मों के विकास द्वारा संभव हुई हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा उत्परिवर्तन प्रजनन से

विकसित प्रजाति पूसा नन्हा में फलन 30 सेंमी की ऊंचाई पर होता है। यह बौनी प्रजाति सघन बागवानी के लिए उपयुक्त है। पूसा नन्हा के पौधों को 1.2 मी. x 1.2 मी. की दूरी पर रोपकर प्रति हेक्टेयर 6400 पौधे समायोजित किए जा सकते हैं। पूसा ड्वार्फ प्रजाति के पौधे भी बौने होते हैं और यह प्रजाति सघन बागवानी में 1.5 मी॰ x 1.5॰ मी की दूरी (4444 पौधे/है॰) पर रोपी जा सकती है।

अनन्नास

सघन बागवानी अनन्नास की खेती में उन्नत प्रौद्योगिकी है। पश्चिम बंगाल, त्रिपुरा और कर्नाटक के प्रगतिशील फल उत्पादक अनन्नास की सघन बागवानी व्यावसायिक स्तर पर कर रहे हैं। उपज बढ़ने के अतिरिक्त खरपतवारों का कम संक्रमण, फलों की धूप से सुरक्षा और पौधों का ना गिरना, अनन्नास में सघन बागवानी के लाभ हैं। पौधों के सघन रोपण से फलों को छाया प्रदान करने वाली लागत भी कम हो जाती है। ऐसा इसलिए संभव है कि शीर्ष पत्तियों के सीधे अभिविन्यास के कारण फलों को नैसर्गिक छाया मिलती है। इस प्रकार समान रूप से पके हुए शोभायमान फल प्राप्त होते हैं। अनन्नास कि सघन बागवानी में अधिक वर्षा वाले आर्द्र क्षेत्रों के लिए प्रति हेक्टेयर लगभग 40,000 से 44,000 पौधे संस्तुत किए जाते हैं। कम वर्षा परंतु मृदु जलवायु वाले क्षेत्रों जैसे कर्नाटक में अधिक पौध सघनता (63,000 से 64,000 प्रति/है॰) संस्तुत की जाती है। अनन्नास की सघन बागवानी में पौध रोपण के लिए दोहरी बाड़ पंक्ति पद्धति अपनाते हैं।

लीची

कई देशों के लीची उत्पादक वर्तमान में प्रति हेक्टेयर 300 से 1500 पौध घनत्व के साथ सघन बागवानी अपना रहे हैं। लीची के सघन बाग परंपरागत बागों की तुलना में लगभग दोगुना लाभ देते हैं। लीची में सघन बागवानी हेतु पौधों को छोटा रखने हेतु प्रतिवर्ष उचित कटाई छंटाई आवश्यक है। भारत में लीची के परंपरागत उद्यानों में वर्ग प्रणाली में पौधे 9 से 10 मीटर की दूरी पर रोपे जाते हैं। इस प्रकार प्रति हेक्टेयर लगभग 90-100 पेड़ों को समायोजित करते हैं। अनुसंधान प्रयोगों में

यह देखा गया है कि युग्मित बाड़ा पंक्ति (डबल हेज) प्रणाली में लीची के पौधों को 4.5 मीटर x 4.5 मीटर x 9.0 मीटर की दूरी पर रोपकर प्रति हेक्टेयर लगभग 329 पौधों को समायोजित किया जा सकता है। परंपरागत बागों की तुलना में लीची के सघन बाग प्रति इकाई क्षेत्र अच्छी गुणवता की अधिक उपज देने में सक्षम हैं। लीची में सघन बागवानी की सफलता हेतु फलों की तुड़ाई उपरांत हल्की कटाई छंटाई की सिफ़ारिश की जाती है।

शीतोष्ण फल

भारत में शीतोष्ण फलों जैसे सेब, नाशपाती, आड़ू, आलू बुखारा और चेरी आदि के बाग परंपरागत सघनता वाले हैं। अत: प्रति इकाई क्षेत्र उत्पादकता बहुत कम है। भारत में सेब की सघन बागवानी धीरे धीरे लोकप्रिय हो रही है। सेब में सघन बागवानी चार प्रकार की होती है - निम्न सघनता (प्रति हेक्टेयर 250 से कम पौधे) मध्यम सघनता (प्रति हेक्टेयर 250-500 पौधे) उच्च सघनता (प्रति हेक्टेयर 500-1250 पौधे) और अत्यधिक सघनता (प्रति हेक्टेयर 1250 से अधिक पौधे)। पादप सघनता बढ़ने पर फल उपज तो बढ़ती है परंतु एक निश्चित सीमा के बाद फलों की गुणवता प्रभावित होती है। सेब में सघन बागवानी के मुख्य लाभ शीघ्र फलन, अधिक उत्पादकता, श्रम लागत में गिरावट और उन्नत फल गुण हैं। सेब में वृक्ष आकार एवं ओज नियंत्रित करने हेतु बौनी प्रजातियों और बौने मूलवृन्तों का प्रयोग, उचित कटाई छंटाई और पादप वृद्धि नियामकों का प्रयोग सहायक सिद्ध होता है। वर्तमान में जम्मू- कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और

उतराखंड के प्रगतिशील किसान मैलिंग-मर्टन 106 मूलवृन्त पर कलम बंधन से तैयार पौधों की सघन बागवानी कर रहे हैं। पश्चिमी देशों में सेब की सघन बागवानी में मैलिंग 9 मूलवृंत का बहुतायत में उपयोग हो रहा है। भारत में बौने मूलवृन्तों जैसे मैलिंग 9 और मैलिंग 27 का मूल्यांकन प्रायोगिक स्तर पर अनवरत है। मुख्यत: बीजू मूलवृन्तों पर आधारित अन्य शीतोष्ण फलों के बाग कम सघनता वाले हैं। सेब के साथ आड़ू, नाशपाती, नेक्ट्रिन व चेरी में अति सघन बागवानी तकनीक का प्रयोग सफलतापूर्वक किया जा रहा है। इस विधि से एकीकृत उत्पादन पद्धति में काफी सुधार लाया जा सकता है।

भविष्य की चुनौतियाँ और संभावनाएं

भारत में फलों की सघन बागवानी में कुछ बाधाएं हैं। केले के अतिरिक्त अन्य फलों में बौनी प्रजाति के पौधे रोपण के लिए पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं हैं। अधिकांश फल फसलों में बौने मूलवृन्तों का अभाव है। पादप वृद्धि नियामकों जैसे कलटार के अनवरत उपयोग से आम के बागों में बंध्यता के समस्या देखी गई है। इन बाधाओं को शीघ्र दूर करने की आवश्यकता है। यद्यपि बौनी प्रजातियों और बौने मूलवृन्तों के प्रयोग से आम की सघन बागवानी में प्रायोगिक सफलता मिली है फिर भी यह पद्धति आम उत्पादकों के बीच प्रचलित नहीं हो पाई है। इस संदर्भ में आम में विकसित की गई सघन बागवानी रणनीतियों का किसान प्रक्षेत्रों एवं कृषि विज्ञान केंद्रों पर प्रदर्शन आवश्यक है।

परंपरागत पद्धति की तुलना में सघन बागवानी उपलब्ध संसाधनों के दक्ष उपयोग में प्रभावी सिद्ध हुई है। सघन बागवानी प्रति इकाई क्षेत्र उत्पादकता बढ़ाने के लिए सबसे प्रभावी उपायों में से एक है। यह प्रौद्योगिकी प्रति इकाई क्षेत्र अधिक लाभ के साथ अधिकतम दीप्तिमान ऊर्जा और कार्बन संचयन हेतु कारगर है। नई उन्नत क़िस्मों के रोपण द्वारा सघन बागवानी को गति प्रदान करने की अति आवश्यकता है। सघन बागवानी हाईटेक फल उत्पादन तकनीकों जैसे टपक सिंचाई, फर्टिगेशन, मल्चिंग, जैव उर्वरक का उपयोग तथा पौध रोग एवं कीट प्रवंधन में भी सुगमता प्रदान करती है। यह मशीनीकरण के लिए भी उपयुक्त है।

कोई लक्ष्य मनुष्य के साहस से बड़ा नहीं, हारा वही जो लड़ा नहीं

- स्वामी विवेकानंद

खाद्य परिरक्षण एवं पैकिंग में नैनोटेक्नोलॉजी का उपयोग

राम रोशन शर्मा

खाद्य विज्ञान एवं फस्लोत्तर प्रौद्योगिकी संभाग
भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान सस्थांन, नई दिल्ली 110 012

'नैनो' शब्द ग्रीक शब्द "ड्वार्फ" से आया है जिसका अर्थ अति सूक्ष्म होता है। नेनोटेक्नोलॉजी एक ऐसा विज्ञान है जिसमें द्रव्य/पदार्थ को आणविक स्केल पर नियंत्रित करके उससे अद्वितीय या अनोखे पदार्थ, उत्पाद या यंत्र तैयार किए जाते हैं। एक नैनोमीटर, मीटर का 10-9वां भाग होता है। एक नैनोमीटर मनुष्य के बाल के व्यास से 60000 गुणा छोटा होता है या विषाणु के आकार जैसा। ऐसा माना जाता है कि पेपर की एक सीट लगभग 10 लाख नैनोमीटर मोटी होती है। रक्त की लाल कणिकाएं लगभग 2000 से 5000 नैनोमीटर एवं डी. एन.ए. का आकार 2.5 नैनोमीटर होता है। अतः नैनोटेक्नोलॉजी उस द्रव्य से संबंध रखती है जो डी.एन.ए. के व्यास से आधा या रक्त की लाल कणिकाओं से आकार में 1/20वां हो। इस संबध में सबसे सफल उदाहरण 'बहुलक-क्ले' निर्मित संकर 'नाईलॉन-क्ले' का है जिसे टोयोटा केंद्रीय अनुसंधान प्रयोगशाला ने 1986 में बनाया था।

नैनोकम्पोजिट' उत्पादों का व्यावसायीकरण टोयोटा द्वारा 1980 के अंत में शुरू किया गया। 1990 के दशक में नैनोकम्पोजिट उत्पादों का उपयोग भोज्य की पैकिंग में शुरू हो गया था जिसमें मुख्यतः 'मोंटकोरिल्लोनाइट' नामक मिट्टी के खनिज का उपयोग नैनो-घटक के रूप में कई पॉलिमरों जैसे पॉलिविनाइल क्लोराइड़, पॉलिइथिलीन, नाइलोन एवं स्टार्च आदि में किया गया। नैनो कणों के उपयोग से बोतलों एवं पैकेजिंग को हल्का एवं दृढ़ बनाया जा सकता है। ऐसे पैकेजिंग उत्पाद उच्च उष्मा को सह लेते हैं एवं इनमें गैसों का अवशोषण भी कम होता है। इन गुणों के कारण नैनो पैकेजिंग सामग्री में पैक किए उत्पाद की भण्डारण अवधि अधिक होती है एवं ढुलाई हेतु लागत में भी कमी आती है। ऐसी पैकेजिंग जिसमें नैनो सामग्री का उपयोग हुआ हो, उसे 'स्मार्ट'

पैकेजिंग कह सकते हैं क्योंकि ऐसी पैकिंग वातावरण की दशाओं के प्रति संवेदनशील होती है एवं यह उपभोक्ता को इसके अंदर उत्पाद के दूषित होने या किसी सूक्ष्मजीव होने की चेतावनी देती है। नैनोटेक्नोलॉजी खाद्य पैकेजिंग में अद्भुत लाभ प्रदान करती है जैसेः पैकेजिंग में रोगाणुरोधी गुण, नमी अवरोधी गुण, दृढ़ता/मजबूती, उष्मा एवं ठंड हेतु स्थायित्व। इन गुणों का उद्देश्य इस प्रकार की पैकेजिंग में रखी सामग्री की आयु का बढ़ाना होता है।

सामान्य नैनो सामग्री एवं भोज्य का परिरक्षण

कार्बन नैनोट्यूबज: ये बेलनाकार नैनोस्केल व्यास की ट्यूबज होती हैं जो खाद्य पैकेजिंग में मजबूती हेतु प्रयुक्त होती हैं। इनमें शक्तिशाली रोगाणुरोधी गुण भी

होते हैं। ऐसा पाया गया है कि ई. कोलाई जीवाणु भी इन ट्यूबज के संपर्क में आने पर मर जाते हैं।

नैनो सेसंर्ज: ये खाद्य में व्याप्त रोगाणुओं, रसायनों एवं विषाक्त पदार्थों का आसानी से पता लगा लेते हैं। विभिन्न अनुसंधान रिपोर्टों से पता चलता है कि नैनोटेक्नोजॉजी द्वारा ऐसी कई विधियां विकसित की गई हैं जिनसे खाद्य में उत्पन्न विषाक्तों, प्रत्यूर्जतोत्पादक पदार्थों, जीवाणुओं एवं विषाणुओं का पता लगाया जा सकता है।

नैनोव्हील्स: इस सामग्री को प्लास्टिक में रोधिता एवं यांत्रिक गुणों हेतु निगमित/सम्मिलित किया जाता है।

नैनो वेसिकल्स: ये ऐसी सामग्री है जो ई. कोलाई, लिस्टिर्या मोनोसाइटोजीन्स एवं साल्मोनेला जाति आदि रोगाणुओं का पता लगाने योग्य होती है।

डी.एन.ए. बायोचिप्स: ये ऐसी चिप्स हैं जो रोगाणुओं का आसानी से पता लगा लेती हैं। इसमें एक कार्बन नैनोट्यूब होती है जो ट्रांसमीटर का काम करती है एवं डी.एन.ए. का एक जांच सैंसर का काम करती है।

इलेक्ट्रॉनिक टंग नैनो-सैंसर: उपभोक्ताओं को पैक की गई खाद्य सामग्री में उत्पादित सूक्ष्म अतिसूक्षम सामग्री के बारे में सूचना देने हेतु इलेक्ट्रॉनिक जीभ विकसित की गई है। यह एक ऐसी जीभ है जो विकारित खाद्य की भी जानकारी देती है।

सूक्ष्मजीव-रोधी गतिविधि: नैनोटेक्नोलॉजी द्वारा पैक की गई भोज्य सामग्री में सिल्वर, मैग्निशियम ऑक्साइड या जिंक ऑक्साइड आदि के नैनो कणों को डाला जा सकता है जो हानिकारक सूक्ष्मजीवों को मारने की क्षमता रखते हैं।

गंद-विकर्षक लेपन: अब ऐसी खाद्य लेपन विकसित की जा रही है जो गंदगी हेतु विकर्षक का काम करें।

बायो-नैनो कम्पोजिट्स

ये संकर नैनो समग्री है जिसमें यांत्रिक, थर्मल एवं गैस-रोधी गुण होते हैं। बायो नैनो कम्पोजिट्स का खाद्य पैकेजिंग हेतु उपयोग ना केवल उत्पाद का ना केवल बचाव एवं उसे लंबी आयु प्रदान करता है परंतु यह वातावरण-हितैषी भी होता है क्योंकि ऐसा करने से पैकिंग हेतु प्रयुक्त प्लास्टिक में भारी कमी आती है। बायोअपघटित फिल्म में पॉलिसेकेराइड्स एवं लिपिड़ होते हैं जो पैकेजिंग फिल्म में रोधी गुणों हेतु उत्तरदायी होते हैं।

नैनो सैंसरज

खाद्य पैकेजिंग के अतिरिक्त खाद्य परिरक्षण का भी बहुत महत्व है। पैक किए गए खाद्यों में नुकसान का नैनो सैंसरज द्वारा आसानी से पता लगाया जा सकता है। उदाहरणार्थ अब वैज्ञानिकों ने कई ऐसे नैनो करा विकसित कर लिए हैं जो खाद्य रोगाणुओं के संपर्क में आने पर विभिन्न रंग विकसित करते हैं। खाद्य पैकेजिंग में समय के महत्व को समझते हुए नैनो सैंसरज का मुख्य उद्देश्य दिन, घंटे या मिन्टों के भीतर खाद्य में रोगाणुओं के संक्रमण का पता लागाना होता है। इस प्रकार के नैनो सैंसर खाद्य पैक में रख दिए जाते हैं जहां वे 'इक्ट्रोनिक नोज' या 'क्लेट्रोनिक टंग' का काम करने विषाक्त भोज्य द्वारा छोड़े गए रसायनों का पता लगाते हैं। कुछ नैनो सैंसरज माइक्रो फ्लूड़िक आधारित भी होते हैं जो खाद्य सामग्री में विषाक्त रसायनों का अतिसूक्ष्म मात्रा में पता लगाते हैं। इसी का उदाहरण है सिलीकॉन-आधारित माइक्रोफ्लूडिक सैंसर जो प्रयोगशालाओं में 'चिप प्रौद्योगिकी' के नाम से प्रसिद्ध है।

नैनो केंटीलीवरस

यह नैनो सैंसरज की नवीन श्रेणी है। इस प्रकार के सैंसरज की खाद्य में विषाक्त तत्वों का पता लगाने का सिद्धान्त उनकी जैविक-बंधनों की परस्पर क्रिया पर आधारित होता है। उदाहरणार्थ प्रतिजन एवं प्रतिविष की अभिक्रिया या एंजाइम एवं सब्सट्रेट या को-फेक्टर की अभिक्रिया। इन अभिक्रियाओं का पता शारीरिक या इलेक्ट्रो-यांत्रिकी संकेतन से चलता है।

खाद्य में नैनोटेक्नोलॉजी का उपयोग

- ऑक्सीकरण से बचाव।
- नमी एवं पी.एच. गतिशील नैनोटेक्नोजॉजी द्वारा कैप्सुलीकृत पोषक तत्वों की नियंत्रित मुक्ति।
- स्वाद आच्छादन।

- नैनो कैप्सुलीकृत न्युट्रास्यूटिकल्स (पौष्टिक औषधीय), विटामिन्स एवं सुस्वाद का वितरण।
- प्लास्टिक में पैक किए भोज्य/खाद्य में नैनोसेंसर द्वारा रोगाणुओं का पता लगाना।
- खाद्य सुरक्षा एवं गुणवत्ता।

खाद्य पैकेजिंग में नैनोटेक्नोलॉजी का उपयोग

- पैकेजिंग का सुधरा प्रतिरूप। क्योंकि नैनोटेक्नोलॉजी द्वारा पैकेजिंग नमी व नमी रोधिता तथा दृढ़ता विकसित की जा सकती है। उदाहरणार्थ पैकिंग हेतु नैनोकम्पोजिट्स से जो बोतलें बनाई जाती हैं उनसे कार्बन डायॉक्साइड़ बिलकुल भी नहीं निकल पाती जो कार्बनीकृत पेयों की निधानी आयु को बढ़ाती है। ऐसी बोतलें ना तो कांच की बोतलों की तरह भारी होती हैं ना ही कैनों से महंगी होती हैं।
- सक्रिय पैकेजिंग द्वारा निधानी आयु में बढ़ोतरी।
- उत्पादों में तरह-तरह के नैनो ऐडिटीव (Additive) डाले जा सकते हैं।
- नैनोटेक्नोलॉजी द्वारा विकसित पैकेजिंग एक 'बुद्धिमान पैकेजिंग' का रूप भी है।
- यह एक जीवाणुरोधी एवं शेल्फ सफाई वाली पैकेजिंग भी है।

उदाहरणार्थ अनाज का सिल्वर नैनोकरण युक्त प्लास्टिक के साथ विन्स में भण्डारण। ऐसा देखा गया है कि सिल्वर नैनोकणों में भूतपूर्व में भण्डारित अनाज में जीवाणुओं को मारने की क्षमता होती है। इस प्रौद्योगिकी के उपयोग से परिवहन के दौरान भी भण्डारित सामग्री की जांच सम्भव है।

जोखिम एवं नियम

हमें यह समझना होगा कि हांलाकि खाद्य पैकेजिंग की नैनो समग्री को सामान्यतः खाया नहीं जाता परंतु फिर भी इसके मुंह, गले या आंतों में व्याप्त सूक्ष्म जीवों पर पड़ने वाले प्रभावों पर शोध की आवश्यकता है। अभी तक नैनोटेक्नोलॉजी संबंधित उत्पादों के उत्पादन हेतु कोई नियम नहीं हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि शायद हमें इस प्रौद्योगिकी के जोखिमों का सही से ज्ञान नहीं है। इसके अतिरिक्त इस प्रौद्योगिकी का पर्यावरण-विष विद्या संबंधी आंकड़े भी उपलब्ध नहीं हैं क्योंकि अभी ऐसे अध्ययन हो नहीं हो पाए हैं जिससे हमें इसके जोखिमों का पता चल सके। यही कारण है कि सही ज्ञान ना होने के कारण यह भी सुझाव देना ठीक नहीं है कि पैकेजिंग हेतु नैनोकम्पोजिट के उत्पादन पर प्रतिबंध लगाया जाए। हांलाकि नैनोकम्पोजिट्स के मनुष्य के स्वास्थ्य एवं पर्यावरण पर प्रभावों पर अध्ययन की तुरंत आवश्यकता है ताकि इन उत्पादों पर सही तरीके से कोई नियम बनाया जा सके।

निष्कर्ष

खाद्य सेक्टर हेतु नैनोटेक्नोलॉजी अब दिन प्रतिदिन आवश्यकता बनती जा रही है। खाद्य पैकेजिंग एवं सुरक्षा हेतु नैनोटेक्नोलॉजी के परिणाम एवं उपयोग दिन प्रतिदिन विकसित किए जा रहे हैं। खाद्य पैकेजिंग में नैनो कणों को सम्मिलित करने से जहां पैकेजिंग में दृढ़ता एवं नमी रोधिता आएगी वहीं दूसरी ओर मूल्यावान सामग्री में बचत होगी एवं अपशिष्ठ भी कम उत्पादित होगा। खाद्य नैनो लेमिनेट्स का उपयोग हम ताजे फलों व सब्जियों, बेकरी व मिष्ठान के उत्पादों हेतु कर सकते हैं जिनमें ये खाद्य को नमी, वसा, गैसों, बे-स्वादपन आदि को रोकने में सहायता प्रदान कर उनकी आयु को बढ़ाएंगे। उत्पाद में नैनो सैंसर द्वारा सुक्ष्म जीवाणुओं या दूषित पदार्थों का पता लगाना नैनोटेक्नोलॉजी की अद्भुत देन है। खाद्य सुरक्षा हेतु नैनो सामग्री खाद्य में सुक्ष्मजीवों के प्रवेश को रोकेगी। इसके अतिरिक्त पैकेजिंग में रखें गए नैनो सैंसर उपभोक्ता को एकदम चौकन्ना कर देंगे जब खाद्य खराब हो जाएगा या होने वाला होगा। अतः इस प्रौद्योगिकी का खाद्य के परिरक्षण या पैकेजिंग में उज्जवल भविष्य प्रतीत होता है।

संरक्षण कृषि के तहत मक्का की व्यावसायिक खेती: फसल विविधीकरण का विकल्प

संदीप कुमार*, विनोद कुमार सिंह*, सूर्य प्रकाश यादव**,अनिल कुमार वर्मा** रिषभ कुमार दीदावत**, प्रवीण कुमार उपाध्याय एवं कपिला शेखावत*

*सस्य विज्ञान संभाग एवं **मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन संभाग
भा.कृ.अनु.प.- भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

मक्का (जिया मेज ल), चावल और गेहूं के बाद दुनिया की महत्वपूर्ण अनाज की फसलों में से एक है, जिसमें मिट्टी और विभिन्न कृषि-जलवायु परिस्थितियों में व्यापक अनुकूलन क्षमता होती है। वैश्विक स्तर पर, मक्का क्षेत्र, उत्पादन और उत्पादकता क्रमशः 184.8 मिलियन हेक्टेयर, 1037.8 मिलियन टन और 5.62 टन प्रति हेक्टेयर है। भारत में, मक्का लगभग 9.86 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र पर होती है, जहां औसत उत्पादन और उत्पादकता क्रमशः लगभग 28.7 मिलियन टन और 2.9 टन प्रति हेक्टेयर है। भारत के प्रमुख मक्का उत्पादक राज्य क्रमशः कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश और बिहार है।

मक्का के दाना में आवश्यक पोषक तत्व

मक्का के दाना में आवश्यक पोषक तत्वों और विटामिन भरपूर मात्रा में पाया जाता है। जिसमें 9.4% प्रोटीन, 4.3% वसा, 74.4% कार्बोहाइड्रेट, 1.3% खनिज और 1.8% फाइबर होते हैं, और विटामिन, कैल्शियम, मैग्नीशियम, फास्फोरस और आयरन की भी थोड़ी मात्रा पायी जाती है जो की स्वस्थ एवं मजबूत मांस पेशिओं के लिए जरुरी है इसके अलावा, गुणवत्ता वाली मक्का, बेबीकॉर्न, स्वीटकॉर्न, पॉपकॉर्न, हाई स्टार्च कॉर्न और हाई ऑयल कॉर्न जैसे विशेष मक्का की भारी मांग है।

मक्का की फसल की मांग

प्रमुख क्षेत्रों में जहां मक्का का उपयोग किया जा रहा है, वह है चारा दाना (63%), भोजन (23%), और विनिर्माण (13%), आदि। बढ़ते बाजार को देखते हुए फास्ट-फूड की खपत, सुअर और मुर्गी पालन व्यवसायों को बढ़ाने के लिए दक्षिण एशिया में मक्का की मांग प्रत्येक दिन बढ़ रही है। फसल कटाई के बाद प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन के माध्यम से रोजगार सृजन की इसमें अपार संभावनाएं हैं। विभिन्न कृषि-पारिस्थितिकी और मौसमों के लिए मक्का का संचय किसी भी अन्य फसल के लिए अतुलनीय है। यह भारत में गंगा के मैंदानी क्षेत्रों में धान -गेहूं प्रणाली के विविधीकरण के लिए धान की फसल का एक संभावित चालक का विकल्प हो सकता है और पोषण और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित कर सकता है।

पारंपरिक विधि से खेती करने के हानिकारक प्रभाव

धान-गेहूं की फसल प्रणाली में उभरती हुई चिंता, जैसे की फसल अवशेषों को जलाना, धान की कटाई के बाद कम समय, गेहूं की बुवाई में देरी, खरपतवारों का परिवर्तन और भू-जल का अधिक दोहन इस प्रणाली में मक्का के साथ विविधीकरण के माध्यम से कम से कम हो सकता है। परंपरागत रूप से, मक्का को सिंचाई की बाढ़ पद्धति के तहत 6-7 जुताई कार्यों के बाद खेत में एक सपाट सतह पर प्रसारित करके उगाया जाता है। सघन जुताई से खेती की लागत बढ़ जाती है और खेती की लाभ प्रदता घट जाती है। पारंपरिक जुताई कार्यों के लिए मशीनरी और ईंधन के बढ़ते उपयोग से वातावरण में हरित गृह गैसों के उत्सर्जन में वृद्धि होती है। गहन जुताई से कार्बनिक पदार्थ के ऑक्सीकरण में तेजी से वृद्धि हो जाती है जिससे मिट्टी जैव कार्बन में कमी आती है और अंततः मिट्टी के गुणों का क्षरण होता है। इसलिए, इन फसलों को उगाने के साथ पारंपरिक क्रियाओं में उच्च ऊर्जा और श्रम लागत में बहुत योगदान होता है जिसके परिणाम स्वरूप कम आर्थिक लाभ मिलता है। नत्रजन उर्वरकों के उपयोग से प्राकृतिक परिस्थितियों में कई नुकसान होते हैं, जैसे डेनिट्रीफिकेशन, वोलटिलिज़ेशन, लीचिंग, क्लेकोलाइड्स (वर्मीक्यूलाइट) के साथ

स्थिरीकरण। भारत में नाइट्रोजन उपयोग दक्षता लगभग 30-40% है क्योंकि बिना किसी परिक्षण के अधिक नाइट्रोजन का प्रयोग, करने के कारण नाइट्रोजन का जड़ क्षेत्र से अलग-अलग प्रक्रिया से नुकसान हो जाता है जिसके परिणाम स्वरूप सतह और भू-जल संसाधनों का प्रदूषण होता है नाइट्रेट नाइट्रोजन, भूमि गत एक्वीफर्स में लीचिंग द्वारा पहुंचता है जहां अगर नाइट्रेट नाइट्रोजन की एकाग्रता 10 मिलीग्राम प्रति लीटर से अधिक है, और अगर मनुष्य इस पानी का सेवन करता है तो यह मनुष्यों में ब्लूबेबी सिंड्रोम का कारण बन सकता है और खुले पानी के स्रोत में यूट्रोफिकेशन का समस्या पैदा कर सकता है नाइट्रस ऑक्साइड की ग्लोबल वार्मिंग क्षमता कार्बन डाइऑक्साइड की तुलना में 310 गुना अधिक है। उत्तर-पश्चिम भारत में, मक्का आधारित फसल प्रणाली को सतत गहनता के अवसरों के लिए और चावल आधारित फसल प्रणाली के विकल्प के रूप में पानी की कमी, संघनन कारक उत्पादकता और कृषि लाभ में कमी, मिट्टी के स्वास्थ्य में गिरावट, जैविक कार्बन और सूक्ष्मजीव बायोमास में कमी की बढ़ती समस्याओं को दूर करने के लिए मक्का की फसल को संरक्षण कृषि के तहत ग्रीन सीकर नाइट्रोजन प्रबंधन को प्रोत्साहित किया जा सकता है जिस को नीचे सही से लिखा गया है।

संरक्षण कृषि

संरक्षण कृषि आधारित फसल प्रबंधन प्रौद्योगिकियां जैसे कि कम से कम मिट्टी की छेड़खानी, कम से कम 30 प्रतिशत क्षेत्र पर फसल अवशेष और फलीदार फसल

विविधीकरण को अपनाकर मिट्टी में कार्बनिक कार्बन और मृदा स्वास्थ्य को स्थायी तरीके से बढ़ाने की क्षमता है।

संरक्षण कृषि दुनिया भर में 180 मिलियन हेक्टेयर भूमि पर प्रचलित है। संरक्षण कृषि के अंतर्गत आने वाले प्रमुख देश यूएसए, ब्राजील, अर्जेंटीना, कनाडा और ऑस्ट्रेलिया आदि है। अवशेषों के प्रतिधारण के साथ शून्य-जुताई इष्टतम मक्का उत्पादन की उपयुक्त विधि है, जो डीजल की लागत को कम करके इनपुट-उपयोग-दक्षता को बढ़ाने में मदद करता है और मिट्टी का कम से कम कम छेडछाड करके और फसल की पैदावार बढ़ाकर मिट्टी के भौतिक व रासायनिक गुणों में सुधार करता है।

संरक्षण कृषि के तहत मक्का की व्यावसायिक खेती

जलवायु: मक्का पूरे उष्णकटिबंधीय और साथ ही दुनिया भर के समशीतोष्ण क्षेत्र में उगाई जाने वाली सबसे बहुमुखी फसलों में से एक है, हालांकि इष्टतम अंकुरण

और विकास के लिए सबसे उपयुक्त तापमान क्रमशः 21^0 और 32^0 सेल्सीयस है।

भूमि की तैयारी: संरक्षण आधारित कृषि प्रणाली में, मक्का की बुवाई "हैप्पी सीडर" का उपयोग करके की जाती है और केवल इंट्रा-पंक्तियों को बाधित किया जाता है। बीज और उर्वरकों को पट्टी में व्यक्तिगत रूप से डाला जाता है और तुरंत ढक दिया जाता है।

बीज और बुवाई: खेत की तैयारी के बाद, बीज को 3-5 सेमी गहराई पर 20 किलो प्रति हेक्टेयर बोया जाता है, और पंक्ति से पंक्ति और पौधे से पौधे के बीच क्रमशः 60 × 20 सेमी दूरी रखना चाहिए। पौधों की आबादी की समरूपता बनाए रखने के लिए बुवाई के 10-15 दिन के अन्दर थिंनिंग की जानी चाहिए।

खरपतवार प्रबंधन: खरपतवार संक्रमण प्रारंभिक विकास और चौड़ी रिक्ति के कारण मक्का में एक गंभीर चिंता का विषय है। इस प्रकार, खरपतवार द्वारा पोषक तत्वों और पानी के नुकसान से बचने के लिए बुवाई के 30 दिन बाद खुरपी से निराई-गुडाई करनी चाहिए। टेम्बोत्रियोन 42% एससी (34.4% w/w) 115 मि.ली. प्रति एकड़, का प्रयोग हम खरपतवार प्रबंधन के लिए कर सकते है जो कि खरपतवार अंकुरण के तुरंत बाद एवं उसके 3-5 पत्तियों की अवस्था तक अच्छा काम करता है

जल प्रबंधन: अच्छा मक्का का उत्पादन लेने के लिए मक्का में 4 से 5 सिंचाई करना चाहिए जो की क्रमशः स्थापना, घुटने की ऊँची अवस्था, फूल की अवस्था, दाना का विकास होते समय और दाना के पकते समय करना चाहिए।

पोषक तत्व प्रबंधन: उच्च बायोमास संचय के कारण मक्का अधिक मात्रा में पोषक तत्वों को ग्रहण करता है, इस प्रकार हमे 80 किलोग्राम फॉस्फोरस प्रति हेक्टेयर (173 किग्रा DAP या 500 किग्रा SSP) और 60 किलोग्राम पोटैशियम प्रति हेक्टेयर (100 किग्रा MOP) की आवश्यकता पढ़ती है आवश्यकता अनुसार हम जिंक, बोरोन एवं सल्फर का प्रयोग कर सकते है और साथ ही बीज उपचार किसी जैव उर्वरक से बुवाई के 10-12 घंटे पूर्व किया जाये। मक्का में नाइट्रोजन को 150 किलो ग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर (325 किलोग्राम नीम लेपित यूरिया) की दर से, इसको हम तीन भागो में विभाजित करके मक्का की बुवाई के समय, घुटने के ऊंचे स्तर और नर पुष्प अवस्था पर उपयोग करें। परंतु ग्रीन सीकर के द्वारा हम 50 अथवा 75 प्रतिशत की मात्रा को बुवाई के समय प्रयोग करते है एवं शेष मात्रा को 42 दिनों के बाद ग्रीन सीकर के अनुसार डालते है जिससे नाइट्रोजन की बचत होती है।

कीट प्रबंधन: इस समय फॉल आर्मी वर्म नामक एक तना छेदक का मक्का में बहुत प्रकोप देखा जा रहा है तो उसके प्रवंधन के लिए स्पिनेटोरम (11.7% एससी) कीटनाशक का प्रयोग आक्रमण के तुरंत बाद कर सकते है जो की 450-500 मिली लीटर व्यावसायिक उत्पाद प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग किया जाता है।

अगर हम इस प्रकार से मक्का की खेती करते है तो किसान भाइयों को 5-8 टन प्रति हेक्टेयर दाना एवं 7-10 टन प्रति हेक्टेयर पशुओं का चारा प्राप्त होगा। संरक्षण कृषि से मक्का का 5 -15 प्रतिशत अधिक उत्पादन होता है पारंपरिक विधि की तुलना में और साथ ही 1500-3000 रूपयों की लागत में भी कमी आती है एवं पर्यावरण को भी कम नुकसान पहुंचेगा, जो की उत्पादन, आर्थिक, खाद्य सुरक्षा और मृदा स्वास्थ्य के दृष्टिकोण के लिए सबसे स्थायी विकल्प है।

अदरक की फसल के हानिकारक सूत्रकृमियों एवं प्रबंधन

राशिद परवेज़[1] एवं उमा राव[2]

[1]प्रधान वैज्ञानिक, सूत्रकृमि संभाग
[2]प्रधान वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, सूत्रकृमि संभाग
भाकृअनुप - भारतीय कृषि अनुसंधान सस्थांन, नई दिल्ली- 110 012

परिचय

अदरक (*जिन्जीबर ओफीसीनेल* रोस्क) (कुल जिंजिबिरेसिया) दक्षिण पूर्व एशिया मूल का है। अदरक के प्रकन्द को प्रमुखतः औषधियों, प्रसाधनों, अचार तथा मसाले के रूप में उपयोग करते हैं। भारत अदरक उत्पादन में विश्व के अग्रणी देशों में से एक है। यहां लगभग 86 हज़ार हेक्टर क्षेत्रफल में इसकी खेती की जाती है जिससे 3.07 लाख टन उपज प्राप्त होती है। भारत के अधिकांश राज्यों में इसकी खेती की जाती है, जिनमें केरल, मेघालय, अरूणाचल प्रदेश तथा उडीसा प्रमुख राज्य है। भारत मुख्यतः युनाईटेड किंगडम, संयुक्त राज्य एवं सउदी अरब को इसका निर्यात करता है। इसके निर्यात से लगभग 30 करोड रूपये प्रतिवर्ष विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है।

यह निर्यात गत वर्षों की तुलना में निरंतर कम हो रहा है। इसका मुख्य कारण उत्पादन में लगातार गिरावट आना है। यू तो उत्पादन घटने के कई कारण है परंतु इनमें से उचित फसल सुरक्षा प्रणालियों को न अपनाने से कई रोगों की समस्याओं का उत्पन्न होना है। इन रोगों में सूत्रकृमि द्वारा उत्पन्न रोग भी एक प्रमुख समस्या है। इन हानिकारक सूत्रकृमियों के बारे में जानकारी न होना इस समस्या को और भी भयावह बना देता है। अत: प्रस्तुत लेख में अदरक की फसल को हानि पहुंचाने वाले सूत्रकृमि उत्पन्न रोग एवं उनके प्रबंधन का वर्णन किया गया है।

सूत्रकृमि

सूत्रकृमि सूक्ष्म आकार, बेलनाकार, रंगहीन तथा धागेनुमा होते है। प्रायः इन्हें नग्न आंखों से नहीं देखा जा सकता है। इन्हें देखने के लिए विशेष प्रकार के सूक्ष्मदर्शी की आवश्यकता होती है। यह मुख्यतः मिट्टी में 5-35 सेमी. तक की सतह पर पाये जाते हैं। यह पौधों की जड़ों को बाहर तथा अन्दर दोनों प्रकार से हानि पहुंचाते हैं। इनकी उपस्थिति एक निश्चित संख्या से अधिक होने पर पौधों को पानी तथा अन्य पोषक तत्वों को प्राप्त करने में बाधा उत्पन्न होती है।

अदरक को विभिन्न प्रकार के सूत्रकृमि (तालिका-1.) हानि पहुंचाते हैं। परंतु इनमें से जड़ विक्षत सूत्रकृमि (*प्राटाइलेंकस स्पीसीस.*), बरोयिंग सूत्रकृमि (*रेडोफोलस सिमिलस*) तथा जड़ गांठ सूत्रकृमि, (*मेलीडोगाइन इनकोग्निटा*) प्रमुख है। यह सूत्रकृमि अदरक की फसल मे निम्न रोग उत्पन्न करते हैं।

तालिका 1: अदरक को हानि पहुंचाने वाले प्रमुख सूत्रकृमि

क्र. सं.	सूत्रकृमि	वैज्ञानिक नाम	आविष्कारी वैज्ञानिक
1.	जड विक्षत सूत्रकृमि	*प्राटाइलेन्कस कोफी*	जीमरमेन 1898 (फिलिजव एवं स्ट्रीकोवन, 1941)
2 .	बरोयिंग सूत्रकृमि	*रेडोफोलस सिमिलस*	कोव 1893 (थोर्न 1943)
3.	जड़ गांठ सूत्रकृमि	*मेलीडोगाइन इनकोग्निटा, एम. एरीनेरिया*	कोफोइड एवं व्हाइट, 1919; (चिटवुड, 1949; नील 1889), चिटवुड, 1949

4.	रेनीफोर्म सूत्रकृमि	*रोटाइलेनकुलस रेनीफोरमिस*	लिनफोर्ड एवं ओलीवीरा, 1940
5.	स्टंट सूत्रकृमि	*टाइलेनकोरिहनकस मशौदी*	सिद्दकी एवं वसीर, 1959
6.	डेगर सूत्रकृमि	*जिफिनिमा रेडिकोला*	गुडी, 1963
7.	निडल सूत्रकृमि	*लोजीडोरस स्पी.*	मकोलटजकी, 1922
8.	लान्स सूत्रकृमि	*हापेलोलेमस इन्डिकस*	शेर, 1963
9.	स्पाइरल सूत्रकृमि	*हेलीकोटाइलेन्कस डाइहिस्ट्रा*	कोव, 1893 (शेर, 1961)
10.	रिंग सूत्रकृमि	*क्रिकोनिमोइडिस* स्पी.	टेलर, 1936
11.	यम सूत्रकृमि	*इस्क्यूटीलोनिमा वीरेकाइरन*	स्टाइनर, 1938 (आन्द्रासी, 1958)

जड़ गांठ रोग

यह रोग मुख्यतः जड़ गांठ सूत्रकृमि, *मेलीडोगाइन* स्पीसीस के द्वारा होता है। यह सूत्रकृमि फसल को 10-50% तक हानि पहुंचाते है। रोग ग्रसित पौधे के प्रमुख लक्षणों में पत्तियों का पीलापन, सूख कर मुरझाना, पौधे की वृद्धि न होना आदि हैं। यह सूत्रकृमि मिट्टी की ऊपरी सतह से 30 से. मी. गहराई तक बहुतायात मिलते हैं। इस सूत्रकृमि की मादा गोलाकार, अण्डे के आकार की होती है। इसके अण्डे जेलेटिन पदार्थ में एकत्रित रहते हैं। यह सूत्रकृमि एक ही फसल में कई पीढियां पूरी करती है। यह सूत्रकृमि लगभग 25-30 दिन में अपना जीवनचक्र पूर्ण कर लेते हैं। इसका नर वेलनाकार, धागेनुमा होता है। इसका लार्वा (द्वितीय डिंभक) नई जड़ों को भेदकर उसके अन्दर घुस जाते हैं तथा पानी तथा भोजन ले जाने वाली कोशिकाओं को अपना भोजन बना लेते हैं। तत्पश्चात् यही सूत्रकृमि गोलाकार होकर जड़ तंत्र में गांठें पैदा कर देते हैं। यह गांठ भूरे रंग की छोटी अथवा बडी होती हैं। अत्यधिक ग्रसित पौधे में इन गांठों का आकार बडा होता हैं। जिस कारण जड़ माला के आकार की दिखाई देती है तथा जड़ें फूली हुई प्रतीत होती है। सूत्रकृमि द्वारा संक्रमित गांठों को जड़ों से अलग नहीं किया जा सकता। इन गांठों के कारण पौधे मृदा में पोषक तत्व एवं पानी की उपलब्धता होते हुऐ भी प्रयाप्त मात्रा में उसे ग्रहण नहीं कर पाते जिस कारण पौधों की पत्तियां पीली पड जाती है तथा वृधि रूक जाती है। जिससे पौधे में दुर्बलता आ जाती है। अतः पौधा बौना दिखाई देने लगता है (चित्र 1)।

चित्र 1: अदरक में जड़ गांठ रोग

अदरक का पीलापन रोग

यह रोग *प्राटाइलेन्कस कोफी* के द्वारा होता है। इस रोग का प्रकोप हिमाचल प्रदेश में ज्यादा होता है। इस रोग के प्रमुख लक्षणों में पत्तियों का पीला पड़ जाना, प्रकन्द पर गहरे भूरे रंग की चित्ती पड़ जाती है। पीलापन रोग अदरक की फसल को हानि पुहचाने बाले रोगो मे सबसे हानिकारक है। यह रोग *पीथीयम अफनिडरमाटम* नामक कबक के द्वारा होता है परंतु *एम. इनकोग्निटा* एवं *पी. कोफी* की उपस्थिति में यह रोग अधिक प्रभावशाली और घातक हो जाता है (चित्र 2)। *आर. सिमिलस* उतकों के ज़रिये पौधे की अंत: कोशिकाओं में प्रवास करता है जिसके कारण पौधे की उपरी पत्तियों का सिरा झुलस जाती है तथा प्रकन्द छोटा, हल्का, घसा हुआ लगता है तथा उस पर जल युक्त चित्ती पड़ जाती है। अत्यधिक

संक्रमित पौधा दुर्बल, पत्तियों में पीलापन तथा सूख जाती है जिस कारण पौधा विकसित नहीं हो पाता और जल्दी मर जाता है।

चित्र 2: *प्राटाइलेन्कस* स्पीसीस द्वारा संक्रमित अदरक का प्रकन्द

प्रबंधन

सूत्रकृमियों की समस्या को निम्नलिखित नियंत्रण विधियों द्वारा प्रबंध किया जा सकता है। इन नियंत्रण विधियों को रोगों की प्रारंभिक अवस्था में अपनाने से पौधों को सूत्रकृमियों द्वारा अत्यधिक हानि से बचाया जा सकता है।

जैविक नियंत्रण

बुआई के समय बेडों पर पोकोनिया क्लामाइडोस्पोरिया का 20 ग्राम /बेड (10^6 cfu) की दर से छिडकाव करके सूत्रकृमियों को नियंत्रण किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त *पैसिलोमाइसिस लिलीसीनस*, *फ्यूसेरियम* स्पी., *एसपरजीलस नाइड्यूलेन्स* तथा *स्लंफयूलोरिओपसीस* स्पी. नामक बिभिन्न प्रकार के जैविक कारको का उपयोग करके सूत्रकृमियों को नियंत्रण किया जा सकता है।

प्रतिरोधक प्रजातियां

अदरक की सूत्रकृमि प्रतिरोधक प्रजातियों को उगाने से रोग के आपतन में कमी आती है तथा पौधे को हानि से बचाया जा सकता है। भारतीय मसाला फसल अनुसंधान संस्थान, कालिकट द्वारा विकसित प्रजाति आई आई एस आर महिमा जड़ गांठ सूत्रकृमि की प्रतिरोधक है। इसके अतिरिक्त इसके कई प्रभेदों को भी चिहनित किया गया है जो सूत्रकृमियों के प्रतिरोधक है।

कल्चरल परम्परागत विधियां

- वनस्पतिकों जैसे नीम ओयल केक (*अजाडिरेक्टा इण्डिका*) 1 टन/ हेक्टर की दर से उपयोग करके पौधों को सूत्रकृमियों की हानि से बचाया जा सकता है।
- पारदर्शी प्लास्टिक शीट को 40 दिनों तक बेड़ों पर फैलाकर सौरीकरण करने से सूत्रकृमियों को नियंत्रण कर सकते हैं।
- अत्यधिक संक्रमित पौधों को उखाड कर नष्ट कर देना चाहिए।
- सूत्रकृमियों रहित बीज का उपयोग बुआई के लिए करना चाहिए।
- सूत्रकृमि को नियंत्रण करने के लिए प्रकन्द को गरम पानी मे 10 मिन्ट तक उपचारित करना चाहिए।

"सब कुछ प्रतीक्षा कर सकता है पर कृषि नहीं"

- प. जवाहर लाल नेहरू

ग्रीनहाउस में शिमला मिर्च का संरक्षित उत्पादन

हेमलता भारती, मामचंद सिंह, प्रवीण कुमार सिंह एवं इंद्रमणि

संरक्षित कृषि प्रौद्योगिकी केंद्र
भा.कृ.अनु.प.- भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली -110 012

भूमिका एवं परिचय

शिमला मिर्च एक उच्च मूल्य वाली ग्रीनहाउस सब्जी फसल है, जिसकी उष्ण कटिबंधों की तुलना में समशीतोष्ण क्षेत्रों में अधिक खेती की जाती है। शिमला मिर्च की प्रजातियां सोलानेसी परिवार के सदस्य हैं, जिसमें टमाटर, आलू, तंबाकू और पेटुनिया शामिल हैं। माना जाता है कि मेंक्सिको शिमला मिर्च के उद्गम का केंद्र है, जबकि दूसरी जातियां दक्षिण अमेंरिका में उत्पन्न हुईं। इसमें भाप के वाष्पशील तेल, वसायुक्त तेल, कैपेसेनिकॉइड्स, कैरोटेनॉइड्स, विटामिन, प्रोटीन, फाइबर और खनिज तत्व सहित कई रसायन शामिल हैं। एक मध्यम हरी बेल मिर्च के विटामिन ए के अनुशंसित दैनिक भत्ता का 8%, विटामिन सी का 180%, कैल्शियम का 2% और लोहे का 2% प्रदान कर सकती है।

भारत में संरक्षित खेती तकनीक का आगमन 1990 के दशक के प्रारंभ में हुआ। भारत सरकार ने संरक्षित खेती के प्रचार और विकास के लिए राष्ट्रीय बागवानी मिशन, नेशनल हॉर्टिकल्चर बोर्ड, राष्ट्रीय कृषि विज्ञान योजना और उत्तर पूर्व और हिमालयी राज्य बागवानी मिशन जैसी विभिन्न योजनाओं और कार्यक्रमों को शुरू किया है। संरक्षित खेती का क्षेत्र छत्तीसगढ़, ओडिशा, आंध्र प्रदेश, गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और तमिलनाडु में अधिक है।

प्लेट 1. ग्रीनहाउस में शिमला मिर्च का संरक्षित उत्पादन

वानस्पतिक विवरण

शिमला मिर्च के पौधे की ऊंचाई अलग-अलग किस्मों के लिए अलग-अलग होती है लेकिन औसत ऊंचाई 30 से 90 सेमी तक होती है। इसमें जड़ें मिट्टी के नीचे 20 या 30 सेमी तक गहरी हो सकती हैं। यह माना जाता है कि छोटे शिमला मिर्च के पौधों में छोटे पत्ते होते हैं। फूल आमतौर पर सफेद रंग के तारे के आकार के होते हैं, फल विभिन्न आकार, वजन और रंग में होता है। अपरिपक्वता के दौरान वे हरे रंग में होते हैं और परिपक्वता के बाद वे लाल, नारंगी, पीले एवं भूरे रंग में बदल जाते हैं। फलों का छिलका चिकना और चमकदार होता है। फल में कई सफेद बीज होते हैं जो इसे मसालेदार स्वाद देते हैं।

जलवायु संबंधी आवश्यकताएं

प्लेट 2. शिमला मिर्च का फूल एवं लाल, नारंगी, पीले फल

शिमला मिर्च की खेती टमाटर व अन्य समस्त सब्जियों के उत्पादन के मुकाबले काफी कठिन है। फसल

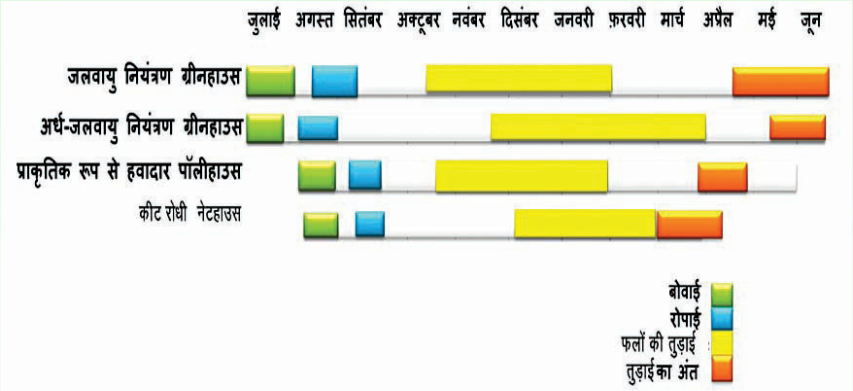

प्लेट 3. शिमला मिर्च की साल भर की मांग को देखते हुए, किसान उपयुक्त संरक्षित संरचना विकल्पों में से एक चुन सकते हैं

उत्पादन पर अन्य अनेक कारकों का भी प्रभाव पड़ता है परंतु विशेष जलवायु इस फसल के सफल उत्पादन के लिए अत्यंत आवश्यक है। अधिक तापमान पर फल स्थापन रुक जाता है तथा फूल झड़ने लगते है। इस फसल से सर्वोत्तम फल स्थापन एवं फलों के विकास हेतु रात का तापमान 16-18 सेल्सियस तथा दिन का तापमान 22-28 सेल्सियस होना चाहिए। जब तापमान व धूप की तीव्रता अधिक हेाती है तो फूल गिरने लगते हैं तथा तापमान जब 10 डिग्री. सेल्सियस या इससे कम होता है तो परागकणों की जीवन योग्यता घट जाती है तथा बीज रहित नुकीले फलों का विकास होता है, जिससे फलों की गुणवत्ता में भारी गिरावट आती है। अत: शिमला मिर्च के सफल उत्पादन हेतु जलवायु की जानकारी होना अत्यंत आवश्यक है। शिमला मिर्च की संरक्षित खेती प्राकृतिक रूप से हवादार पॉलीहाउस में 8 से 10 माह की लंबी अवधि तक की जा सकती है तथा जलवायु नियंत्रण ग्रीनहाउस में इसकी खेती पूरे साल की जा सकती है। वैसे शिमला मिर्च का उत्पादन साधारण कीटरोधी नेट हाउस में भी 6 से 7 महीने तक किया जा सकता है।

महत्व व आवश्यकता

शिमला मिर्च की उत्तर भारत के मैदानों में मध्य सितंबर से अक्टूबर माह के तृतीय सप्ताह तक रोपाई की जाती है। लेकिन जब इस फसल की रोपाई सितंबर माह में की जाती है तो विषाणु रोग को फैलाने वाले कीट (सफेद मक्खी) बहुत अधिक संख्या में मौजूद रहते हैं। जिससे खुले खेत में फसल पर विषाणु रोग का अत्यधिक प्रकोप होता हैं तथा दूसरी तरफ तापमान अधिक होने के कारण भी फसल पर इसका दुष्प्रभाव पड़ता है। यदि शिमला मिर्च को ऐसे ग्रीनहाउस या पोलीहाउस में उगाया जाये जिसमें कूलिंग यंत्र लगे हों तो उत्तर भारत के मैदानों में इसका सफल उत्पादन हो सकता है। इसके लिए दिन में 5-6 घटें तक ग्रीनहाउस को ठंडा करने की आवश्यकता होती है। तथा अंदर सफेद मक्खी या दूसरे कीट आदि भी प्रवेश नहीं कर सकते है। जिससे फसल स्वस्थ रहती है। यही नहीं यदि फसल को कीटरोधी नेट से बने नेटहाउस में उगाया जाये तो भी विषाणु रोग से फसल को पूर्ण रूप से बचाया जा सकता है।

किस्मों का चुनाव

आजकल बड़े शहरों के बडे बड़े होटलों तथा उनके अन्य उच्च बाजारों में लाल व पीले रंग के पूर्ण रूप से पके हुये फलों की मांग बढ़ रही है इससे उत्पादक अच्छा भाव भी ले सकते है। लेकिन इन सबके लिये उपयुक्त किस्मों का चयन अत्यंत आवश्यक है। ऐसी किस्मों का चुनाव करना चाहिए जिनके फलों में पकने पर चार लोब बने तथा फल का औसत भार 180-200 ग्रा. के लगभग हो। पकने पर फल आर्कषक पूर्ण लाल या पीला रंग ग्रहण करें। देश में उपलब्ध इन किस्मों में भारत, महाभारत, बाम्बी, ओरोबेली, हीरा, इन्दिरा, गोल्डन समर, तनवी, नन-3019, नन-3020, अर्का गौरव व अर्का मोहिनी आदि प्रमुख है। विदेशी किस्मों में मजुरका, फियस्टा, टोरकल, पारकर, तथा इजराइल में विकसित किस्मों में एच. ए.-1195, 1931, 1038, 1589 व 988 आदि प्रमुख हैं।

जिनका संरक्षित संरचनाओं में लंबी अवधि (8 से 10 महीने) तक उत्पादन किया जा सकता है।

पौध तैयार करना व रोपाई करना

क्योंकि शिमला मिर्च की संकर किस्मों के बीज बहुत अधिक मंहगे होते हैं। तथा दूसरी ओर खुले खेत में विषाणु रोग पौध में लगने का खतरा बना रहता है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए इसकी पौध को भी संरक्षित तरीके से ग्रीनहाउस में मिट्टी रहित माध्यम पर प्लास्टिक ट्रे में तैयार किया जाना चाहिए तथा इस प्रकार पौध 28-30 दिन में रोपाई योग्य हो जाती है। पौध में जड़ों का विकास बहुत अच्छा होता हैं। इससे पौधों का मुख्य खेत में रोपाई के बाद स्थापन जल्दी व अच्छा होता है। पौध को सामान्य तारीको से जमीन से उठी हुई क्यारियों पर भी तैयार किया जा सकता है। लेकिन इस प्रकार की पौधशाला को कीट रोधी नेट (40 से 50 मेंष) से ढक्कर ही स्वस्थ (विषाणु रोग रहित) पौध तैयार की जा सकती है। एक हेक्टेयर क्षेत्र के लिये उच्च तकनीकी से पौध तैयार करने के लिए 125-150 ग्राम बीज की ही आवश्यकता पड़ती है। वैसे सामान्यत: 200 से 250 ग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है। पौध की ग्रीनहाउस में अच्छी प्रकार से तैयार भूमि में उठी हुई क्यारियाँ बनाकर रोपाई की जाती है। इसके लिये क्यारियों की चौड़ाई 90-100 सेमी. तथा लंबाई ग्रीनहाउस के आकार पर निर्भर करती है। पौधों की रोपाई ड्रिप लाइन बिछाने के बाद 30 सेमी. की दूरी पर की जाती है। तथा एक क्यारी पर दो ड्रिप लाइन 50-60 सेमी. की दूरी पर डाली जाती है। पौध की रोपाई जहां तक संभव हो दोपहर बाद ही करनी चाहिए तथा रोपाई के तुरंत बाद पौधों को हल्का पानी देना चाहिए।

पौधों की कटाई, छंटाई व सहारा देना

शिमला मिर्च के पौधों की भी प्रारंभिक अवस्था से ही कटाई व छंटाई की आवश्यकता होती है। प्लास्टिक की रस्सियों के द्वारा पौधे को सहारा दिया जाता हैं। ठीक टमाटर की तरह ही प्रत्येक क्यारी को दो ड्रिप लाइनों के ऊपर 9-10 फीट की ऊचाई पर दो लोहे के तार क्यारियों पर लंबाई की दिशा में बांधे जाते है तथा इन पर प्रत्येक पौधे के उपर दो रस्सी जमीन की सतह तक छोड़ते है। पौधों को शुरू से दो मुख्य शाखाएं बनाने हेतु उनकी कटाई-छंटाई की जाती है। तथा प्रत्येक पौधे से पहले जोड़ पर लगे फूल को हटा दिया जाता है। तथा बाद में दो शाखाओं पर प्रत्येक जोड़ पर पत्तियां व एक फूल छोड़ते हुए अतिरिक्त शाखाओं की निरंतर कटाई-छँटाई की जाती है। प्रत्येक शाखा को एक रस्सी के सहारे ऊपर की दिशा में बढ़ने दिया जाता है। इस प्रकार कटाई व छंटाई का कार्य 15-20 दिन के अंतराल से किया जाता है। ग्रीनहाउस में शिमला मिर्च की फसल लंबी अवधि तक उगाई जाती है। सितंबर माह में लगाई गयी फसल सामान्यत: मई या जून माह तक उगायी जा सकती है।

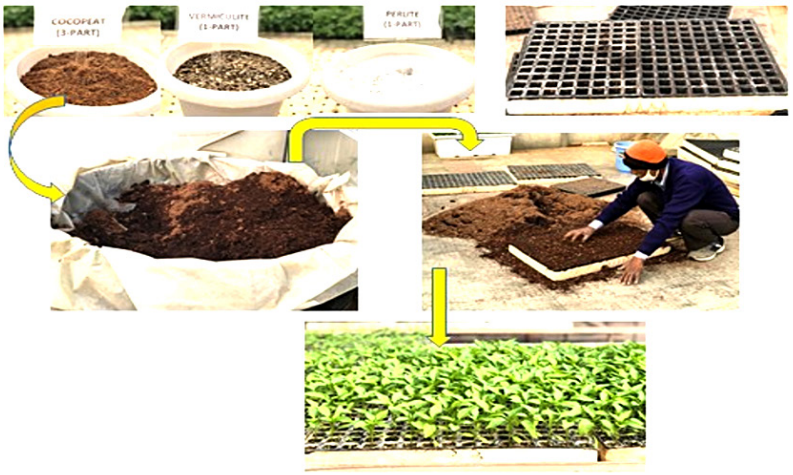

प्लेट 4. शिमला मिर्च सीडलिंग के लिए हाई-टेक नर्सरी तैयार करना

सिंचाई व उर्वरक देना

ग्रीनहाउस या नेटहाउस में उगाई गई शिमला मिर्च फसल को बूंद-बूंद सिंचाई पद्धति द्वारा उगाना ज्यादा ठीक रहता है। तथा उर्वरक भी सिचाई जल के साथ

प्लेट 5. मुख्य दो शाखायें बनाने हेतु कटाई-छंटाई एवं रस्सी के सहारे शिमला मिर्च

घोलकर पौधों को दिया जाता है। इस प्रकार पौधों को मौसम व उनकी आवश्यकता के अनुसार पानी व उर्वरक दिये जाते है। सामान्यत: फल स्थापन तक 2.0 से 2.5 घन मीटर पानी प्रति 1000 वर्ग मीटर क्षेत्र हेतु तथा इसमें 80 से 100 पी.पी.एम. नत्रजन, 50-60 पी.पी.एम. फॉस्फोरस तथा 100 से 120 पी.पी.एम. पोटाश खाद की मात्रा एक बार दी जाती है। गर्मी में खाद-पानी का अंतराल 2-3 दिन तथा सर्दी के मौसम में 6-8 दिन पर रखा जाता है। फल स्थापन से फल तुड़ाई तक पानी व तीनों उर्वरकों की मात्रा बढ़ाई जाती है। तथा पहली तुड़ाई के बाद उसे फिर प्रथम अवस्था तक घटा दिया जाता है। खाद व पानी की मात्रा फसल की अवस्था व भूमि के प्रकार व मौसम पर भी पूर्ण रूप से निर्भर करती है।

संरक्षित खेती में पादप संरक्षण

ग्रीनहाउस शिमला मिर्च में माइट्स की मुख्य समस्या रहती हैं जो कि विषाणु रोग फैलाने में सहायक होते हैं। अत: इनकी सामयिक रोकथाम सफल फसल उत्पादन हेतु अत्यंत आवश्यक है। डाइकोफोल या एन्डोसल्फॉन कीटनाशकों को 2.0 मि.ली./लीटर पानी में घोल बनाकर आवश्यकतानुसार छिड़काव करना चाहिए। छिड़काव आवश्यकता अनुसार दोहराना चाहिए। इसके अतिरिक्त मेंटासिस्टॉक्स नामक कीटनाशों का भी छिड़काव किया जा सकता है। इनकी मात्रा 1.5 से 2.0 मि.ली./लीटर पानी में उपयुक्त होती है। इसके अतिरिक्त शिमला मिर्च में कवक जनित रोगों का भी फैलने का अंदेशा रहता है। जिनमें पाउडरी मिल्ड्यू तथा डाउनी मिल्ड्यू प्रमुख हैं, लेकिन उनको सरलतापूर्वक कवकनाशीयों जैसे मैन्कोजेब 2.0 ग्राम दवा/लीटर पानी में घोलकर या टोपसिन नामक कवकनाशी 1.0 से 1.5 मि.ली./लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करके काफी हद तक नियंन्त्रित किया जा सकता है।

फलों की तुड़ाई, वर्गीकरण व बाजार में बेचना

आजकल बड़े शहरों के बड़े-बड़े होटलों तथा अन्य उच्च बाजारों में लाल व पीले रंग की पूर्ण पकी हुई शिमला मिर्च के फलों की मांग बढ़ रही है। ग्रीनहाउस में

प्लेट 6. ग्रीनहाउस शिमला मिर्च में पादप संरक्षण

पैदा की गई शिमला मिर्च फसल से फल हमेंशा पूरा रंग लेने के बाद ही तुड़ाई की जाती है। तुड़ाई या तो चाकू या कैची की सहायता से की जाती है तथा इसकी तुड़ाई करते समय 2 से 3 से.मी. तक लंबा डंठल फल के साथ छोड़कर फल को पौधे से काटा जाता है। इसके बाद फलों को रंग व आकार तथा कोष्ठ के आधार पर श्रेणीवद्ध करने के बाद ही उच्च बाजार में बेचा जाता है। लाल व पीले फलों को पैंकिग के बाद भी उच्च बाजार में अधिक

कीमत पर बेचा जा सकता है। रंग वाली शिमला मिर्च की एक 1000 वर्ग मीटर अच्छे ग्रीनहाउस क्षेत्र से 50 से 60 कुंतल उपज प्राप्त की जा सकती है। लेकिन फसल की उपज पूर्ण रूप से फसल प्रबंधन व किस्मों पर निर्भर करती है।

सारांश

क्योंकि उच्च श्रेणी के ग्रीनहाउस में खेती करना भारतीय कृषकों के लिये काफी कठिन कार्य है जिनको ठंडा व गर्म करने या अकेले ठंडा करने की व्यवस्था हो, की आधारभूत लागत बहुत अधिक होती है तथा इनके दिन प्रतिदिन रख-रखाव पर भी बहुत अधिक धन खर्च होता है क्योकि उनको इस उत्पाद के लिये उच्च बाजार नहीं मिल पाते है। जबकि यदि शिमला मिर्च को पूर्णतया प्राकृतिक रूप से वायुसंवाहित ग्रीनहाउस में उगाया जाये तो भी इसकी खेती 7-8 माह तक सफलतापूर्वक की जा सकती है तथा फल भी उच्च गुणवत्ता के होते है। यही नही इसकी खेती साधारण कीटरोधी नइलोन नेट से बने नेट-हाउस में भी सफलतापूर्वक 6-7 महीने तक अधिक लाभ-लागत अनुपात के साथ की जा सकती है। तथा ये नेट-हाउस विषाणु रोगरहित फसल उत्पादन में ज्यादा सार्थक सिद्ध हो सकते है।

अध्यापक राष्ट्र की संस्कृति के चतुर माली होते हैं। वे संस्कारों की जड़ों में खाद देते हैं और अपने श्रम से उन्हें सींच-सींच कर महाप्राण शक्तियां बनाते हैं।

- महर्षि अरविंद

नैनो प्रौद्योगिकी (नैनो कणों) की कृषि में संभावनाएं

सुनील कुमार, हनुमान सिंह जाटव एवं कैलाश चन्द्र

तकनीकी सहायक, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
[2]सहायक प्राध्यापक, [2]कृषि महाविद्यालय (श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर)
फतेहपुर, शेखावाटी, सीकर, राजस्थान

परिचय

आज नैनो प्रोद्योगिकी विश्व के हर देश का भविष्य बन गया है। यह पर्यावरण, ऊर्जा, चिकित्सा और कृषि आदि क्षेत्र में क्रांतिकारी रूप से एक नवीन तकनीक के रूप में उभर रही है। आज और भविष्य में कृषि व समाज के सामने आने वाली विभिन्न चुनोतियों का सामना करने के लिये अत्याधुनिक समाधानों के लिये नैनो विज्ञान और प्रोद्योगिकी में काफी संभावनायें है।

नैनो प्रोद्योगिकी किसी भी तकनीक को नैनो पैमाने पर दर्शातीं है जिसका हर क्षेत्र में भिन्न -भिन्न उपयोग है। नैनो प्रोद्योगिकी में नैनो कणों का उपयोग किया जाता है जिनका आकार 1-100 नैनोमीटर के बीच होता है। नैनो ग्रीक भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है 'बोना' अधिक तकनीकी शब्दों में, नैनो शब्द का अर्थ होता है। किसी भी चीज़ का एक अरबवां हिस्सा उदहारण के लिए एक विषाणु आकार में लगभग 75-100 नैनोमीटर होता है व जीवाणु का आकार 1000-10000 नैनोमीटर होता है। यधपि नैनो सुनने मे नया शब्द लगता है लेकिन यह क्षेत्र बिलकुल नया नही है क्योंकि धरती पर जीवन के प्रारंभ से ही प्रक्रति मे ऐसे कई पदार्थ है जो बड़े से लेकर नैनो पैमाने पर काम करते है। नैनो तकनीक इसके नैनोमीटर आकार से निकलने वाले पदार्थों के विशेष गुणों पर केंद्रित है जो की उस पदार्थ के असली स्वरूप से बिलकुल भिन्न होते है व इनकी कार्य क्षमता कई गुना अधिक होती है। इन्ही गुणों के करण नैनो कणों ने विज्ञान और प्रोद्योगिकी के क्षेत्र में नये द्वार खोल दिये है। यह तकनीक आने वाले समय में हमारी अर्थव्यवस्था और समाज पर गहरी छाप छोड़ सकती है। चिकित्सा, पर्यावरण, रसायन, ऊर्जा, सूचना, संचार व दैनिक उपभोग में की जाने वाली वस्तु में बहुतायत से इस तकनीक का उपयोग किया जाता है लेकिन अब इसके साथ ही कृषि क्षेत्र मे भी इस तकनीक का प्रयोग बढ़ रहा है इसके अंतरगत इसने विषाक्त मृदा व प्रदूषित जल सुधार में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

नैनो कणों की संश्लेषण प्रक्रिया:

नैनो कणों का संश्लेषण मुख्य रूप से दो विधियों से किया जाता है:-

(अ)ऊपर से नीचे (टॉप-डाउन) विधि: इस विधि मे किसी पदार्थ की बड़ी आधारभूत इकाई को छोटी तथा नैनो इकाईयो में परिवर्तित करते है।

(ब) नीचे से ऊपर (बोटम-अप) विधि: यह कई सारी बुनियादी इकाइयो (परमाणुओं) को भौतिक व रासायनिक बल के द्वारा एकत्रित करके नैनो एकत्रित करके नैनो रूप मे लेन के सिद्धांत पर आधारित है।

नैनो कणों के उपयोग से दूषित मृदा सुधार:

नैनो कणों के उपयोग से दूषित मृदा में सुधर किया जाता है इस पर कई वैज्ञानिकों ने जांच एवं शोध कार्य किए है। नैनो कणों को जब दूषित मृदा मे डालते हैं तो ये कण अधिक सतही क्षेत्रफल के कारण मृदा मे उपस्थित दूषित (धात्विक व अधात्विक) कणों को अवशोषित कर लेते है तथा मृदा को स्वच्छ व स्वस्थ बनाते है। जब नैनो कण मृदा मे डाले जाते है तो ये मृदा मे उपस्थित विषाक्त तत्व अघुलनशील अवस्था मे आ जाते हैं जिन्हें पौधे अवशोषित नही कर पाते या यह भी कह सकते हैं कि ये विषाक्त तत्व पौधों को हानि नही पहुंचा पाते हैं। यदि मृदा में ये दूषित कण मौजूद रहेंगे तो फसल इनको अवशोषित कर लेगी जिसे यदि हम काम में लेंगे या पशु

खायेंगे तो स्वास्थय पर बहुत बुरा प्रभाव डालेंगे। इसलिए प्रायः यह कहा जा सकता है कि "मृदा स्वस्थ तो हम स्वस्थ"।

सुधार के लिए पारंपरिक संसाधनों का प्रयोग करने की बजाये उन्ही संसाधनों के नैनो कण अधिक लाभकारी होते है क्योकि इनका सूक्ष्म आकार तथा अत्याधिक विशिष्ट सतह क्षेत्र होने के कारण मृदा में इनकी रासायनिक प्रतिक्रिया बढ़ जाती है। जो मृदा सुधार के लिए उच्च क्षमता तथा उच्च दर को दर्शाता है। इनका अति सुक्ष्म आकार स्थानिक प्रयोग में बहुत आसान है एवं इनके वितरण के लिए बहुत फायदेमंद है। मृदा सुधार के लिए कुछ अच्छी क्षमता वाले नैनो कण जैसे जिओलाईट्स, नैनो उर्वरक, शून्य आवेश लोहा (जीरो-वेलेंट आयरन) नैनो कण आयरन ऑक्साइड के नैनो कण, फॉस्फेट आधारित नैनो कण और आयरन सल्फेट नैनो कण इत्यादि का प्रयोग शामिल है। इनका प्रयोग एवं विस्तारपूर्वक विश्लेषण निम्नानुसार है:

1. **जिओलाईट्स:** जिओलाईट्स क्रिस्टलीय क्षार (सोडियम या पोटेशियम) और पृथ्वी के क्षारीय धनायनो (कैल्शियम या मैग्नीशियम) के हाईड्रेटेड अलुमिनो सिलिकेट होते है। उनकी अनूठी विशेषता यह है कि जियोलाइट्स मे एक खुली, तीन आयामी पिंजरे जैसी संरचना होती है और अंदर खुले नाल का एक विशाल जाल फैला हुआ होता है। अंदर के नाल और छिद्र, आमतोर पर 0.3 से 0.7 नैनोमीटर व्यास में होते है जो की इसे अत्याधिक सतही क्षेत्रफल प्रदान करते है। कृषि क्षेत्र में इन जियोलाइट्स को दूषित मृदा के लिए मृदा कंडिशनर, उर्वरक और सुधारक के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। जियो लाइट्स में जल और पोषक तत्व धारण करने की अद्भुत क्षमता होती है जो रेतीली व अनुपजाऊ मृदाओं के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती है। कई प्रयोगों से वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि मृदा में पानी की उपलब्धता बढ़ाने और वनस्पति के अस्तित्व को सुनिश्चित करने के लिये जियोलाइट्स एक बहुत उपयोगी मिटटी संशोधक है जहां मिटटी की संरचना खराब है, उच्च स्थूल घनत्व है व जल धारण क्षमता कम है और उपलब्ध पानी मुख्य रूप से वर्षा पर निर्भर करता है। मृदा नमी को संरक्षित करने हेतु जियो लाइट्स मिटटी में एक कोशिकाओ (केप्लरी) के रूप में कार्य करता है जिनमे जल एकत्रित रहता है और पौधों की जड़ों तक पहुंचता है इस प्रकार यह पौधों की वर्षा या सिंचाई पर निर्भरता को कम करने में सहायता करता है। परीक्षणों में अम्लीय मृदा पर जियोलाइट्स के 10 प्रतिशत प्रयोग से वर्षा के सतही प्रवाह तथा मृदा अपरदन से होने वाले नुकसान मे सुधार पाया गया है। अत: नैनो कणों से मृदा में स्थिरता आती है व भौतिक दशा सुधरती है जिसके फलस्वरूप सतही अप्रवाह तथा अपरदन से होने वाला मृदा नुकसान कम होता है।
2. **नैनो उर्वरक:** नैनो प्रोद्योगिकी के उपलब्ध विकल्पों में से एक है नैनो उर्वरक, जिससे दुनिया की बढती आबादी को खिलाने के लिए फसल उत्पादन में वृद्धि हो सके। जियोलाइट्स वर्धित उर्वरकों के आलावा कुछ ऐसे और भी नैनो कणों को खोजा गया है जो उर्वरक के रूप मे उपयोगी है। जियोलाइट्स को कृषि के क्षेत्र मे नत्रजन उर्वरकों के निक्षालन से होने वाले नुकसान एवं पौधों मे अमोनिया विषाक्तता को कम करने व कृषि पैदावार बढाने के लिए प्रभावी ढंग से प्रयोग किया जा सकता है।
3. **शून्य-आवेश लोहा (शून्य वेलेंट आयरन):** पहली बार शून्य वेलेंट आयरन तकनीक 1990 में काम में लाया गयी थी, तब इस तकनीक को विषाक्त हेलोजिनेटेड हाईड्रोकार्बन योगिको और अन्य पेट्रोलियम के नुकसान को कम करने के लिए किया गया था। क्योकि गैस टैंक रिसाव में कार्बनिक विलायक फैलाव के माध्यम से ये भूजल में प्रवेश करते है। ये धात्विक लोहे के नैनो कण अत्याधिक सक्षम अपचयन अभिकर्ता के रूप काम करते है और स्थिर जैविक प्रदूषक को नष्ट करके सरल व कम हानिकारक योगिको को परिवर्तित करने में सक्षम है। इसी प्रकार के नैनो कण क्लोरिनयुक्त मीथेन, क्लोरिनयुक्त बेंजीन, कीटनाशक, पोलिक्लोरिननेटेड बाईफिनाइल और नाइट्रओ-एरोमेटिक यौगिक आदि प्रदूषकों के नुकसान को कम करने में सक्षम होते है।

4. **आयरन ऑक्साइड के नैनो कण:** लोह मिट्टी का एक महत्वपूर्ण घटक है जो सभी जीवो व पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्व के रूप में पृथ्वी में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। यह उपलब्ध तत्वों में चौथे स्थान पर विद्यमान है। आयरन ऑक्साइड मृदा में प्राय: नैनो किरिस्टल के रूप में पाया जाता है जिसका व्यास 5-100 नैनोमीटर है। इसकी सतह विभिन्न प्रकार के अकार्बनिक और कार्बनिक अवयवों को अवशोषित करने की क्षमता और पर्यावरण के प्रति अनुकूल होने के कारण, आयरन ऑक्साइड नैनो कणों के कई रूपों का निर्माण किया गया है तथा मिटटी और पानी के सुधार के लिए स्थानिक अनुप्रयोगो में सफलतापूर्वक किया जाता है। इन नैनो कणों को दूषित मृदा में बहुत कम कीमत पर पम्प द्वारा या सीधे तोर पर फैला सकते हैं, क्योकि इनसे द्वितीय प्रदूषण का खतरा नही होता है। औद्योगिका अवशिष्ट पदार्थ जिसने आयरन ऑक्साइड प्रचुर मात्रा में विद्यमान होते है उन्हें आजकल मृदा में धातु स्थितिकरण के लिये प्रयोग किया जा रहा है। हाल ही में जलीय माध्यम में किए गए शोध कार्यो से यह ज्ञात हुआ है कि आयरन ऑक्साइड नैनो कण मृदा में मौजूद हानिकारक एवं विषाक्त भारी कणों की उपलब्धता को अवशोषित कर कम कर देता है।

5. **फॉस्फेट आधारित नैनो कण:** इन कणों के कार्य करने की प्रक्रिया शून्य वेलेंट आयरन और आयरन आक्सिड नैनो कणों से अलग है। जब इनको मृदा में मिलाया जाता है तो विषाक्त योगिक के साथ मिलकर अत्यधिक अघुलनशील और स्थिर फॉस्फेट यौगिकों का गठन करते है जिनकों पौधे भी अवशोषित नही कर पाते और ये जल के साथ घुलकर मृदा जल में भी नही जा पाते | इस प्रकार दूषित मृदा का सुधार करते है। इसका एक विशिष्ट उदहारण लैड (पारा) से विषाक्त मृदा सुधार का है। एक शोध कार्य के परिणामों में दर्शाया गया है कि नैनो कणों के प्रयोग कर तीनो प्रक्रति की मृदा (क्षारीय, उदासीन और अम्लीय) में सीसा के निक्षालन और पादप उपलब्धता में प्रभावी रूप से कमी होती है। और यदि किसी भी हानिकारक भरी धातु के निक्षालन व पादप उपलब्धता में कमी आयगी व जीवों को हानि नहीं पहुंचा पायेगी।

6. **आयरन सल्फाईड नैनो कण:** उपर्युक्त वर्णित फॉस्फेट आधारित नैनो कणों द्वारा भारी धातु स्थिरीकरण के समान ही सल्फाईड आधारित नैनो कण भी जल और मृदा में पारा और आर्सेनिक को ख़त्म करने में सक्षम है। जलभराव वाली मृदाओं एवं भारी धातुओं से विषाक्त मृदा में अपचयित सल्फर ऑक्साइड का प्रयोग किया जाता है। जिसमें अपचायित सल्फर स्थिरीकरण का कार्य करता है जो मृदा में उपस्थित विषाक्त धातु के साथ रासायनिक अभिक्रिया कर अत्याधिक अघुलनशील धातु के सल्फाइड बनाकर मृदा में सुधार करता है।

निष्कर्ष:

नैनो कणों द्वारा मृदा सुधार पर अब तक किए गए सभी शोध कार्यो से यह निष्कर्ष निकलता है कि यह पारंपरिक संसाधनों को प्रयोग करने की अपेक्षा जादा लाभकारी है तथा अधिक सतही क्षेत्रफल होने के कर्ण मृदा में आसान वितरण द्वारा मृदा सुधार की दर में भी वृद्धि की गयी है। अत: नैनो प्रोद्योगिकी, प्रदूषित जल एवं मृदा सुधार के लिए एक वरदान है। जिस प्रकार यह तकनीक बड़े पैमाने पर ऊर्जा तथा चिकित्सा में काम ली जा रही है उसी प्रकार यदि कृषि में भी लीं जाये तो आने वाले समय में विषाक्त मृदाओं को उपजाऊ कृषि भूमि में बदल सकते है।

छोटा सा बीजोपचार : खुशियां अपार

अतुल कुमार, देवेन्द्र कुमार यादव, श्यामल कुमार चक्रवर्ती, ज्ञान प्रकाश मिश्र, एवं शैलेन्द्र कुमार झा

बीज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संभाग

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110 012

वर्ष 2020 में भारत सरकार ने एक ड्राफ्ट आदेश जारी किया है जिसमें बहुत सारे फफूंदनाशी एवं कीटनाशी दवाओं के ऊपर प्रतिबंध लगाने की बात की गयी है। यह अंतिम निर्णय नहीं है और सरकार ने सभी वर्ग के लोगों से इस मसौदे को अंतिम रूप देने के पहले प्रतिक्रियाएं आमंत्रित की है। प्रश्न ये है की आखिर सरकार को ऐसे कदम क्यों उठाने पड़ रहे हैं, क्योंकि अगर किसानों की बात करें तो ये ऐसे रसायन हैं जिनका प्रयोग देश के लगभग 75 प्रतिशत किसान करते हैं और जिनका मूल्य बहुत ज्यादा नहीं है। इसका सबसे प्रमुख कारण वातावरण एवं मानव जीवन पर पड़ने वाला प्रतिकूल प्रभाव हैं और यही कारण है कि बीजोपचार की महत्ता दिनोदिन बढ़ती जाएगी। बीजोपचार एक सस्ती तथा सरल तकनीक है, जिसे करने से किसान भाई बीज जनित एवं मृदा जनित रोगों से अपनी फसल को खराब होने से बचा सकते हैं। इस तरीके में बीज को बोने से पहले फफूंदनाशी या जीवाणुनाशी या परजीवियों का उपयोग करके उपचारित करते हैं। भारत एक उष्ण कटिबंधीय देश है। उष्ण प्रदेश होने के कारण यहां रोगों एवं कीटों का प्रकोप अधिक होता है जिससे की उपज को बहुत अधिक नुकसान होता है। उन्नत किस्मों के प्रयोग, पर्याप्त उर्वरक देने व सिंचाई के अतिरिक्त यदि पौध संरक्षण के उचित उपाय न किए जाये तो फसल की अधिकतम उपज नहीं मिल सकती है। आधुनिक समय में खाद्यान की मांग बढ़ती जा रही है तथा आपूर्ति के संसाधन घटते जा रहे हैं जिससे प्रौद्योगिकी चुनौतीपूर्ण की अपेक्षा ज्यादा जटिल हो गयी है। हमारा देश कृषि प्रधान देश है, जिनमें छोटे किसानों की संख्या ज्यादा है। जिनके पास छोटे-छोटे खेत है और प्रायः खेती ही उनके जीवन-यापन का प्रमुख साधन है। विज्ञान के नवीन उपकरणों, तकनीकों, तरीकों तथा प्रयोगों से किसानों की स्थिति में सुधार हुआ है, तथा नवीन तकनीकों के प्रयोग करने से उनकी जीवन शैली में तीव्र बदलाव आये है इसी को ध्यान में रखते हुए किसान नई-नई तकनीकों का उपयोग करके उत्पादन तथा उत्पादकता को बढ़ा सकते है। इन्ही में से एक तकनीक बीचोपचार है जिसको सुनियोजित तरीके से अपनाने से खेती की उत्पादकता बढ़ सकती है। बीज की गुणवता को बनाए रखने के लिए बीजोपचार करना अति महत्वपूर्ण है, जैसे बच्चे को सही समय पर टीका नहीं लगने पर जीवन भर बहुत सारे बीमारियों का खतरा बना रहता है वैसे ही अगर पौधे का टीकाकरण जो की यहां पर बीजोपचार से है, न किया जाये तो बहुत सारे रोगों के आक्रमण होने का भय बना रहता है।

बीजोपचार करने के लिए निम्नलिखित विधियां हैं:-

जीवाणु बीजोपचार

इस विधि में सुक्ष्म परजीवीनाशी जैसे ट्राइकोड्रमा विरिडी, ट्राइकोड्रमा हारजिएनम, स्यूडोमोनास, फ्लोरेसेंस इत्यादि का उपयोग करके बीज को उपचारित करते हैं।

स्लरी बीजोपचार

यह विधि समय की बचत वाली विधि है। इस विधि से बीज बुआई के लिए जल्दी तैयार हो जाते है। इसमें अनुशंसित मात्रा की दवा के साथ थोड़ा पानी मिलाकर पेस्ट बना लेते है। इस पेस्ट को बीज में मिलाकर छाया में सुखा लेते है सूखे हुए बीजो से यथाशीघ्र बुआई करते हैं। इस विधी द्वारा बीज कम समय में बुआई के लिए जल्दी तैयार हो जाते हैं।

सूखा बीजोपचार

इस विधि में बीज को अनुशंसित मात्रा की दवा के साथ सीड ड्रेसिंग ड्रम में डालकर अच्छी तरह हिलाते हैं जिससे दवा का कुछ भाग प्रत्येक बीज पर चिपक जाए।

सीड ड्रेसिंग ड्रम का उपयोग तब करते है, जब बीज की मात्रा ज्यादा होती है। अगर बीज सीमित मात्रा में है तो सीड ड्रेसिंग ड्रम के स्थान पर मिट्टी के घड़े का प्रयोग कर सकते हैं। सीड ड्रेसिंग ड्रम या मिट्टी के घड़े में बीज की मात्रा दो तिहाई से ज्यादा नहीं रहनी चाहिए।

भीगा बीजोपचार

इस विधि का उपयोग सब्जियों के बीजों के लिए ज्यादा फायदेमंद होता है। इस विधि में अनुशंसित मात्रा की दवा का पानी में घोल बना कर बीज को कुछ समय के लिए उसमें छोड़ देते हैं तथा, कुछ समय पश्चात् छायादार स्थान में 6-8 घंटे सुखाकर यथाशीघ्र बुआई करते हैं।

गर्म जल द्वारा बीजोपचार

यह विधि जीवाणु एवं विषाणुओं की रोकथाम के लिए ज्यादा लाभदायक है। इस विधि में बीज या बीज के रूप में प्रयोग होने वाले पादप भाग जैसे कंद को 52-54 डिग्री सेल्सियस तापमान पर 15 मिनट तक रखते हैं। जिससे रोगजनक नष्ट हो जाते हैं लेकिन बीज अंकुरण पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है।

सूर्यताप द्वारा बीजोपचार

यह विधि गेहूं, जौ एवं जई जिनमें अनावृत कंडवा रोग लगता है, उसके नियंत्रण के लिए लाभदायक है। इस विधि में बीज को पानी में कुछ समय (3-4 घंटे) के लिए भिगोते हैं और फिर सूर्यताप में 4 घंटे तक रखते हैं जिससे बीज के आंतरिक भाग में रोगजनक का कवकजाल नष्ट हो जाता है। रोगजनक को नष्ट करने के लिए रोगजनक की सुषुप्तावस्था को तोड़ना होता है, जिससे रोगजनक नाजुक अवस्था में आ जाता है, जो कि सूर्य की गर्मी द्वारा नष्ट किया जा सकता है। यह विधि गर्मी के महीने (मई-जून) में कारगर पाई गई है।

राईजोबियम कल्चर से बीजोपचार

इस विधि में खरीफ की पांच मुख्य फसलों (अरहर, उड़द, मूंग, सोयाबीन एवं मूंगफली), तथा रबी की तीन दलहनी फसलें (चना, मसूर तथा मटर) में राईजोबियम कल्चर से बीजोपचारित कर सकते हैं। 100 ग्राम कल्चर आधा एकड़ जमीन में बोये जाने वाले बीजों को उपचारित करने के लिए प्रर्याप्त होता है। इस विधि में 1.5 लीटर पानी में लगभग 100 ग्राम गुड़ डालकर खूब उबाल लेते है। ठंडा होने पर एक पैकेट कल्चर डालकर अच्छी तरह मिला लेते हैं। इस कल्चरयुक्त घोल के साथ बीजों को इस तरह मिलाते हैं कि बीजों पर कल्चर की एक परत चढ़ जाए। उपचारित बीजों को छाया में सुखा कर यथाशीघ्र बुआई करते हैं।

अनुपचारित गेहूं का बीज

कार्बोक्सिन एवं थीरम 2.5 ग्राम/ किलोग्राम की दर से

उपचारित गेहूं का बीज

बीज उपचार के लिए अनुशंसा

वैसे तो भारत सरकार ने अभी कुछ ही दिन पहले लगभग 27 कीटनाशियों के प्रयोग को बंद करने का एक ड्राफ्ट तैयार किया है जिसके लिए 45 दिनों का समय दिया है। अगर किसी को इस संदर्भ में याचिका देकर सरकार के फैसले को चुनौती देनी है तो वे ऐसा तर्क के साथ कर सकते हैं। परंतु इस प्रक्रिया में समय लगने की संभावना है और आज की तारीख में नीचे तालिका में वर्णित संस्तुति को किसान भाई अपना सकते हैं।

धान्य फसलें

क्रं सं	फसल का नाम	प्रमुख रोग एवं कीट	रसायन/ जैवनाशी का नाम	रसायन/ जैवनाशी (ग्राम@किलो बीज)
1	गेहूं	अनावृत कंड	कार्बोक्सिन 37.5%+ थीरम 37.5 %	2.5
		अल्टरनेरिया पर्ण धब्बा हेल्मिन्थोस्पोरियम अंगमारी	कार्बेन्डाजिम	2.0
		दीमक	क्लोरपाईरिफोस 20 इ सी	5.0 मि ली
2	धान	झुलसा/ब्लास्ट, पर्ण धब्बा भूरी चित्तीं रोग, तना सड़न	कार्बेन्डाजिम/ कैप्टान/ कार्बोक्सिन 37.5%+ थीरम 37.5 %	2
		जीवाणु पर्ण अंगमारी	स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस 0.5% डब्ल्यू पी	10
		दीमक	क्लोरपाईरिफोस 20 इ सी	5.0 मि ली
3	अरहर, चना, मसूर, मूंग	उकठा	कार्बेन्डाजिम/ थीरम	2.0
		झुलसा	ट्राईकोडर्मा विरिडी 1% डब्ल्यू पी	10
		दीमक	क्लोरपाईरिफोस 20 इ सी	5.0 मि ली
4	मक्का	हेल्मिन्थोस्पोरियम अंगमारी, शीथ अंगमारी,	थीरम / कैप्टान	3.0
5	मूंगफली	बीज सड़न, तना सड़न, जड़ सड़न	कार्बेन्डाजिम/ थीरम	2.0/3.0
6	सरसों	स्वेत किट्ट/ सफ़ेद रतुआ	कार्बेन्डाजिम/ थीरम	2.0/3.0
7	तीसी	उकठा रोग	थीरम	3.0
8	गन्ना	लाल सड़न रोग	कार्बेन्डाजिम/ थीरम	2.0/3.0
			ट्राईकोडर्मा विरिडी 1% डब्ल्यू पी	10

सब्जियां

क्रं सं	फसल का नाम	प्रमुख रोग एवं कीट	रसायन/ जैवनाशी का नाम	रसायन/ जैवनाशी (ग्राम/ किलो बीज)
1	गाजर, प्याज़, मूली	बीज एवं मृदा जनित रोग	कार्बेन्डाजिम	2.0
2	बैंगन	जीवाणु मुरझा रोग	स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस 0.5% डब्ल्यू पी	10

3	शिमला मिर्च	जड़ सूत्रकृमि	स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस 0.5% डब्ल्यू पी	10
4	मटर	उकठा रोग	थीरम / कैप्टान	3.0
5	भिंडी	उकठा रोग	थीरम / कैप्टान	3.0
6	गोभी	मृदुरोमिल आसिता	कार्बेन्डाजिम	2.0
		बीज एवं मृदा जनित रोग	ट्राईकोडर्मा विरिडी 1% डब्ल्यू पी	4-5
		जड़ सूत्रकृमि	स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस 0.5% डब्ल्यू पी	10
7	आलू	मृदा एवं कंद जनित रोग,	मेंटालैक्सिल + मन्को-ज़ेब	2.5
8	टमाटर	उकठा	कार्बेन्डाजिम/ थीरम	2.0/3.0
9.	मिर्च	मृदा जनित रोग	ट्राईकोडर्मा विरिडी 1% डब्ल्यू पी	4-5
		जैसिड्स, एफिड्स, थ्रिप्स	इमिडाक्लोप्रीड 70 डब्ल्यू एस	2.0

पौधा (बिचड़ा) उपचार : इस विधि द्वारा मुख्यतः धान, टमाटर, बैंगन, गोभी, मिर्च इत्यादि के पौधों को जीवाणु रोगों से बचाया जाता है। इस विधि में रोपाई से पहले पौधों की जड़ों को एंटीवायोटिक (एस्ट्रेप्टोसाईक्लिन) के घोल में डुबो कर उपचारित करते है।

बीजोपचारित करने की विधि :

बीज उपचारित करने के लिए सर्वप्रथम एफ0आई0आर0 क्रम याद रखना चाहिए। बीज को सर्वप्रथम फफूंदनाशी से उसके बाद कीटनाशी से (2 घंटे बाद) और अंत में राईजोबियम कल्चर से (4 घंटे बाद) उपचारित करें। कवकनाशी, कीटनाशी तथा जैविक नियंत्रण क्रम गैर दलहनी फसलों पर लागू करनी चाहिए।

सावधानियां :

- बीज उपचारित करने के लिए निर्धारित मात्रा का ही प्रयोग करें।
- बीजोपचार करने के बाद बीज को छायेदार जगह में ही सुखाएं।
- रसायनों के प्रयोग से पहले उसकी समाप्ति तिथि अवश्य जाँच लें।
- उपचार के बाद डिब्बों तथा थैलों को मिट्टी के अंदर अवश्य दबा दें तथा अच्छी तरह साबुन से हाथ धो लें।
- रसायनों को बच्चों तथा मवेशियों की पहुंच से दूर रखें।
- रसायनों के प्रयोग के समय न तो कुछ खायें, न ही धूम्रपान करें।
- दवा को उसके मूल डिब्बे में रखें तथा उसका लेबिल खराब न होने दे। खाद्य, जल या शराब के डिब्बों पर कीटनाशक रसायन को कभी न भरें।

निष्कर्ष :

- यह एक सस्ती तथा सरल विधि है।
- कोई भी किसान भाई बड़ी आसानी से इस विधि को अपना सकते हैं।
- रासायनिक पदार्थो का प्रयोग इस विधि में कम से कम होता है।
- बीजोपचार करने के बाद खड़ी फसल में सुरक्षा के अन्य उपायों की कम आवश्यकता पड़ती है इसलिए यह एक पर्यावरण अनुकूल तकनीक है।
- फसल उत्पादन में इस विधि द्वारा किसान भाइयों को 15-20 प्रतिशत तक मुनाफा मिलता है।

आने वाले दिनों में विशेषकर जैविक कीटनाशियों का प्रयोग ज्यादा से ज्यादा करने की जरूरत है जिससे इन रसायनों पर हमारी निर्भरता धीरे-धीरे कम हो। आज की तारीख में किसानों के हित को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार के इन रसायनों के प्रयोग को बंद करने के कदम के विरोध में बहुत सी संस्थाओं एवं वैज्ञानिकों ने अपना स्पष्टीकरण भारत सरकार को भेजा है परंतु वास्तविकता ये है कि आज ना कल अगर हमें जीवित रहना है और स्वस्थ रहना है तो इस दिशा की ओर कदम बढ़ाना ही होगा और रसायनों के प्रयोग को निषेध करना ही होगा। इन तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि किसानो की खुशहाली में उन्नत बीज का जितना अहम योगदान है उतना ही अहम योगदान बीजोपचार का भी हैं। अतः बीजोपचार बीजो उत्पादन में खुशहाली का आधार है।

हताश न होना सफलता का मूल है और यही परम सुख है। उत्साह मनुष्य को कर्मो में प्रेरित करता है और उत्साह ही कर्म को सफल बनाता है।

- वाल्मीकि

पुष्प की सुगंध वायु के विपरीत कभी नहीं जाती लेकिन मानव के सदगुण की महक सब ओर फैल जाती है।

- गौतम बुद्ध

जैविक खेती के नुस्खें

रणबीर सिंह, शिवाधार मिश्र एवं वैभव बालियान

जैव पदार्थ उपयोग इकाई, सस्य विज्ञान संभाग एवं कृषि प्रसार संभाग
भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान नई दिल्ली 110012

जैविक खेती कृषि की वह पद्धति है जिसमें मृदा की उत्पादन क्षमता में वृद्धि के लिए उन विधियों का उपयोग किया जाता है जिससे मृदा की जीवंतता बनी रहे तथा पर्यावरणीय हानि भी न हो। जैविक खेती में मृदा को भौतिक माध्यम न मानकर जैविक माध्यम माना जाता है। जैविक खेती प्राकृतिक संसाधनों एवं पर्यावरण को संरक्षित रखने की सबसे अच्छी विधि है। जिसमें हम जैव विविधता को बनाए रखते हुए मृदा की संरचना तथा पारिस्थितिक तंत्र को संतुलित रख सकते हैं। जैविक खेती देशी खेती की उन्नत पद्धति है। इसमें संश्लेषित रसायनों के स्थान पर गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट, जैव उर्वरक, फसलों के अवशेषों, हरी खाद द्वारा फसलों को पोषक तत्व प्रदान करते हैं तथा जैविक विधि से तैयार फसल सुरक्षा उपायों का उपयोग करते हैं, जिससे मृदा में कार्बन की मात्रा बढ़ जाती है तथा उसकी उर्वरा-शक्ति भी संरक्षित रहती है। कीट व रोग नियंत्रण के लिए उपयुक्त फसल चक्र, यांत्रिक एवं जैविक नियंत्रण विधियों का प्रयोग किया जाता है। जैविक खेती के उत्पाद की उत्पादन लागत कम आती है तथा मृदा की जलग्रहण क्षमता, प्राकृतिक उर्वरक निर्माण क्षमता इत्यादि में वृद्धि होती है।

जैविक खेती अपनाने की विधियां

जैविक खेती में इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि सभी प्रकार के अवशिष्टों तथा प्राकृतिक संसाधनों का खेती के विकास में उपयोग किया जाए तथा खेती उत्पाद में वृद्धि की जाए। स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरुकता के साथ जैविक उत्पादों की मांग भी काफी बढ़ रही है। जैविक उत्पाद प्रमाणीकरण के लिए विभिन्न एजेंसी काम कर रही हैं। हम जैविक खेती की बात तो करते हैं और किसानों को इसे अपनाने के लिए सुझाव भी देते हैं, लेकिन अपने देश में ऐसे बहुत किसान हैं, जो यह नहीं जानते कि जैविक खेती को अपनाने की क्या विधियां हैं। यदि किसान जैविक खेती अपनाकर उत्तम फसलोत्पादन लेना चाहते हैं, तो निम्नलिखित जैविक घटकों या विधियों को अपनाना आवश्यक होता है।

खेत की परती छोड़ना

मई-जून के महीनों में खेत की 30-45 सें.मी. गहरी जुताई करके उन्हें कुछ दिनों के लिए खुला छोड़ दिया जाना चाहिए। ऐसा करने से खरपतवारों के बीज तथा मृदा में पाये जाने वाले हानिकारक कीट आसानी से सूर्य की गर्मी द्वारा नष्ट हो जाते हैं।

फसल चक्र में परिवर्तन

जैविक खेती में यह महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। फसल चक्र में प्रति इकाई क्षेत्र से निश्चित समय में फसलोत्पादन हेतु बार-बार एक ही फसल को नहीं उगाना चाहिए बल्कि फसल चक्र में निश्चित समय व स्थान में अनाज, दलहन, तिलहन, सब्जी, चारा आदि की फसलों को क्रम में उगाना चाहिए। ऐसा करने से एक फसल द्वारा अवशोषित पोषक तत्वों को आसानी से पुनः संचित किया जा सकता है। इसके साथ-साथ प्रतिवर्ष नई फसल उगाने

से मित्र कीटों की संख्या में वृद्धि होती है, क्योंकि उन्हें विभिन्न फसलों में लगने वाले भिन्न-भिन्न कीट, भोजन या प्रजनन के लिए उपलब्ध होते हैं। धान-गेहूं फसल चक्र में दलहनी फसल उगाने से मृदा में नाइट्रोजन की मात्रा बनी रहती है।

जैविक खेती में जाल फसल (ट्रेप क्रॉप)

एक जाल फसल, आस-पास उग रही फसलों से कीड़े आकर्षित करती है और कीटनाशकों के उपयोग के बिना मुख्य फसल को कीटों द्वारा नष्ट होने से बचाती है। जाल फसलों को संरक्षित की जाने वाली फसल के क्षेत्र की परिधि के आस-पास या उनके बीच में लगाया जाता है। यदि किसान जैविक खेती में टमाटर की खेती करते हैं तो सूण्डी कीट के प्रकोप से फसल को बचाने के लिए गेंदा की फसल टमाटर की फसल के चारों ओर लगा देनी चाहिए। ऐसा करने से कीट गेंदे को प्रभावित करेंगे और अन्दर की फसल सुरक्षित हो जायेगी। जहां पर सूत्रकृमि की समस्या हो वहां पर भी गेंदा की फसल को उगानी चाहिए।

जैविक खेती हेतु फसलों के बीजों का चुनाव

जैविक स्रोत से प्राप्त बीज का ही उपयोग करें। सभी फसलों के बीज एवं रोपण सामग्री जैविक रूप से प्रमाणित होना चाहिए। इसके साथ-साथ स्थानीय जलवायु के अनुकूल एवं पीड़कों के प्रति अवरोधी होना चाहिए।

जैविक खेती हेतु बीजोपचार

जैविक खेती हेतु बीजोंपचार के लिए जैव उर्वरक या जैविक स्रोत से प्राप्त सामग्री का उपयोग करना चाहिए। नत्रजन जीवाणु खाद के लिए दलहनी फसलों को राइजोबियम से तथा अनाज वाली फसलों को एजोटोबैक्टर या एजोस्पाइरिलम जीवाणु खाद से उपचारित करें। फॉस्फेट की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए फॉस्फेट विलायक जीवाणु खाद (पीएसबी) का प्रति हेक्टेयर 3 पैकेट का उपयोग करें। इसके लिए पहले 1 से 2 लीटर जल में 200 से 300 ग्राम गुड़ मिलाकर घोल बनाएं तथा उसमें 3 पैकेट कल्चर मिलाएं। तैयार घोल का बीजों पर छिड़काव करके हल्के से मिलायें, फिर छाया में सुखाकर बुवाई करें। रोग नियंत्रण हेतु 6 से 8 ग्राम ट्राइकोडर्मा फफूंदनाशी से बीजोपचार करें। जैविक स्रोत में 20 लीटर जल में 5 कि.ग्रा. गोबर, 5 लीटर गौमूत्र और एक कि.ग्रा. मेंड की मृदा मिलाकर एक दिन के लिए रख दें और बीजोपचार करें। उत्तम अंकुरण हेतु 24 घंटे मक्का, 7 घंटे गेहूं, 1 से 2 घंटे मूंगफली के बीजों को जल में डुबोकर रखने के बाद 4 से 5 घंटे सुखाया जाता है।

सारणी 1. विभिन्न फसलों में जैव उर्वरक की अनुशंसित मात्रा

1. एजोटोबैक्टर 200 ग्राम/पीएसबी 200 ग्राम/10 कि.ग्रा. बीज की दर गेहूं, मक्का, धान, ज्वार, कपास, आलु, बैंगन, टमाटर, सूरजमुखी, धान, गन्ना, हरे चारे वाली फसलें
2. एजोस्पाइरीलम 200 ग्राम/पीएसबी 200 ग्राम/10 कि.ग्रा. बीज की दर घास कुल की फसलें
3. एजोटोबैक्टर 1 कि.ग्रा./पीएसबी 1 कि.ग्रा. का तैयार घोल/एकड़ टमाटर, बैंगन, मिर्च, फूलगोभी तथा अन्य रोपित सब्जियों के लिए।

फॉस्फोरस को घुलनशील बनाने वाले जैव उर्वरक

भारतीय मृदाओं में फॉस्फोरस का स्तर मध्यम से निम्न है। कुल मृदा फॉस्फोरस का 1/5 प्रतिशत भाग ही पौधे ग्रहण कर पाते हैं। शेष भाग अघुलनशील अवस्था में रहता है। फसलों में उपयोग किए जाने वाले कुल उर्वरक का 30 प्रतिशत भाग फसल को प्राप्त होता है। शेष भाग रसायनिक क्रियाओं के द्वारा अघुलनशील हो जाता है। कुछ जीवाणु जैसे कि बैसिलस तथा स्युड़ोमोनास, कवक जैसे कि पेनिसीलियम एवं एस्परजिलस मृदा फॉस्फोरस को घोलने के साथ-साथ फसल में दिए गए उर्वरक की उपयोग क्षमता को भी बढ़ाते हैं। इन जैव उर्वरकों के प्रयोग से 15-25 प्रतिशत फॉस्फोरस उर्वरकों के प्रयोग में बचत होती है।

फसलों के विकास के लिए अर्क

100 कि.ग्रा. गोबर, 100 लीटर गौमूत्र, 100 कि.ग्रा. मूंगफली की खली के मिश्रण को मिलाकर एक पॉलीथीन में पैक करें तथा आवश्यकतानुसार एक एकड़ में छिड़काव करें।

अधिक पैदावार हेतु टॉनिक

एक लीटर नीम तेल, 3 कि.ग्रा. बारीक रेत, 3 कि.ग्रा. गाय का गोबर अच्छे से मिलाकर गीले बोरे में भरकर अंधेरे में 3 दिन के लिए रख दें। इसे 150 लीटर जल में मिलाकर सुबह-सुबह, छिड़काव करें।

जैविक खादों का प्रयोग

जैविक खादों में पौधों के लिए आवश्यक सभी पोषक तत्व समाहित होते हैं। जैविक खाद न केवल पोषक तत्वों की ही आपूर्ति करती है बल्कि अनुपलब्ध पोषक तत्वों को उपलब्ध बनाकर फसलों को प्रदान करती है। आधुनिक खेती में अधिक रासायनिक उर्वरकों के उपयोग से मृदा में जीवांश कार्बन का स्तर लगातार कम होता जा रहा है तथा कृषि रसायनों के अंधाधुंध उपयोग से मृदा जीव भी नष्ट होते जा रहे हैं। अतः भविष्य में मृदा क्षमता को संरक्षित रखने तथा इनकी निरंतरता को बनाए रखने के लिए जैविक खादों को प्रयोग करना परम आवश्यक है। इन्हें तैयार करना सरल व सस्ता होता है तथा जैविक खादों के प्रयोग से प्राप्त उत्पाद गुणवता उत्तम होता है। जैविक खेती में फसलों के पोषण के लिए फसलों के अवशेषों, खरपतवारों व अनुपयोगी जैव पदार्थों वर्मीकम्पोस्ट, फॉस्फोकम्पोस्ट, सुपर कम्पोस्ट, नाडेप कम्पोस्ट, गौ-मूत्र की खाद बनाने में अधिकाधिक उपयोग करें। जैविक खादों के प्रयोग से मृदा संरचना अच्छी हो जाती है तथा मिट्टी में लाभकारी जीवों की संख्या बढ़ जाती है, जो मृदा की उपजाऊ शक्ति बढ़ाने में सहायक है। किसान गोबर की खाद वैज्ञानिक विधियों से नहीं बनाकर गोबर को गांव के बाहर खुले में रोड किनारे डालते हैं, उसके नाइट्रोजन तत्व धूप से नष्ट हो जाते हैं तथा अन्य पोषक तत्व वर्षा आने पर वर्षा जल के साथ बहकर नदी/नालों में चले जाते हैं। अतः फसल अवशेषों तथा गोबर को गडढ़ा बनाकर कम्पोस्ट खाद बनानी चाहिए।

सारणी 2. जैविक खादों और खलियों में उपलब्ध नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश

क्र. सं.	जैविक खाद	नाइट्रोजन (प्रतिशत)	फॉस्फोरस (प्रतिशत)	पोटाश (प्रतिशत)
1.	गोबर की खाद	0.5-1.5	0.3-0.9	0.3-1.5
2.	ग्रामीण कम्पोस्ट	0.5-1.0	0.4-0.8	0.8-1.2
3.	शहरी कम्पोस्ट	0.7-2.0	0.9-3.0	1.0-2.0
4.	करंज खली	3.8-4.0	0.8-0.9	1.0-1.2
5.	नीम खली	4.9-5.1	1.0-1.2	1.3-1.5
6.	अरंडी खली	4.1-4.3	1.6-1.8	1.1-1.3
7.	मूंगफली खली	7.1-7.3	1.3-1.9	1.7-1.9
8.	नारियल खली	2.8-3.0	1.7-1.9	1.7-1.9
9.	सरगुजा खली	4.6-4.8	1.6-1.8	1.31-1.3
10.	तिल खली	6.0-6.2	1.8-2.0	1.0-1.2

मटका खाद (नीमच गोशाला विधि)

इस विधि से मटका खाद बनाने के लिए देशी गाय का 15 कि.ग्रा. ताजा गोबर, 15 लीटर गौमूत्र तथा 15 लीटर जल को एक साथ मिट्टी के मटके में घोल लें, उसमें 250 ग्राम गुड़ भी मिला लें। इसको कपड़ा या टाट से ढक दें। 4 से 5 दिन बाद इस घोल में 200 लीटर जल मिलाकर एक एकड़ में छिड़काव करें। यह छिड़काव बुवाई के 15 दिन बाद करें। सामान्य फसल में 3 से 4 और लंबी अवधि वाली फसल में 8 बार छिड़कें।

खली खाद

एक कि.ग्रा. गोबर, एक कि.ग्रा. चने की खली और 250 ग्राम नीम की खली को 20 लीटर जल में मिलाकर तीन दिन के लिए रखते हैं। इस मिश्रण को सुबह-शाम अच्छी प्रकार से मिला लेना चाहिए। फिर इसे छानकर पत्तों पर छिड़ सकते हैं और जड़ में डाला जा सकता है।

नाडेप कम्पोस्ट

भारत में नाडेप कम्पोस्ट विधि का विकास महाराष्ट्र के किसान नारायण राव पंडरी पाण्डे के द्वारा किया गया था। इस विधि में गड्ढे के स्थान पर मृदा के ऊपर ईटों को टांका बनाया जाता है। टांके के अन्दर हवा का आवागमन बनाए रखने के लिए दीवार पर छेद छोड़ देते हैं। नाडेप कम्पोस्ट बनाने के लिए सामग्रियों में 1400 से 1500 कि.ग्रा. वानस्पतिक अवशेष पदार्थ, 90 से 100

कि.ग्रा. पशु का गोबर, 1750 कि.ग्रा. गौमूत्र से भिगी मिट्टी एवं ऋतु अनुसार जल की आश्यकता पड़ती है।

कम्पोस्ट खाद

फसलों के अनुपयोगी अवशेष (धान/गेहूं का भूसा, दलहनी फसलों के डंठल व पतियां, पेड़-पौधों के पत्तें इत्यादि) एवं अपघटित होने वाले अवांछनीय खाद्य अवशेषों को पशुओं के गोबर के साथ मिश्रित करके कम्पोस्ट बनाई जाती है। हरी घास की पतियों और चूल्हे की राख मिश्रण में डालने से खाद एवं कम्पोस्ट का टीका डालने से खाद बनने की प्रक्रिया तेज हो जाती है। कम्पोस्ट के प्रयोग से मृदा उर्वरा-शक्ति में वृद्धि होती है एवं पैदावार में भी वृद्धि होती है।

सुपर कम्पोस्ट

इस खाद को बनाने के लिए निश्चित माप 15×6×3 फीट का गडढ़ा तैयार करके उसमें विधि अनुसार फसल अवशेष, घास-फूंस व गोबर को अच्छी प्रकार मिलाकर भर दें। प्रति गड्ढा 2 कट्टे सिंगल सुपर फॉस्फेट डालें। नमी की बनाए रखने के लिए समय-समय पर जल का छिड़काव आवश्यक है।

प्रोम जैविक खाद

प्रोम जैविक खाद बनाने में गोबर की खाद तथा रॉक फॉस्फेट काम में लिया जाता है। फसलों का फॉस्फोरस तत्व की आपूर्ति के लिए उपयोग में लिए जाने वाले उर्वरकों जैसे सुपर फॉस्फेट व डीएपी के विकल्प के रूप में प्रोम को अपनाया जा सकता है।

सान्द्र जैविक खाद

अच्छी प्रकार सड़े हुए सान्द्र जैविक खाद जापान में बहुत प्रचलित है और प्रमुखता कमजोर मिट्टी में या ऐसे खेतों में जहां रसायनिक खेती छोड़कर जैविक खेती की शुरूआत की जा रही है, में प्रयोग किए जाते हैं।

आवश्यक सामग्री

सामग्री का नाम	**मात्राएं**
धान या गेहूं का भूसा	10 भाग
मछली खाद	1 भाग
खली	1 भाग
अंडों के छिलके	कुल भार का 1 प्रतिशत
रॉक फॉस्फेट	कुल भार का 1 प्रतिशत
शीरा	थोड़ा सा
जंगल की मृदा	जीवाणु घोल (इ.एम.)

सान्द्र मुर्गी की खाद

मुर्गियों की सूखी बीट, खली, कुछ स्वच्छ राख एवं रॉक फॉस्फेट को 10:10:22 के अनुपात में मिलाकर पीस लें। उत्कृष्ट सान्द्र तैयार है। फसल एवं मिट्टी की आवश्यकतानुसार विभिन्न अवयवों के अनुपात में फेर बदल किया जाता है। अम्लीय मृदा के लिए इस मिश्रण में चूने का भी प्रयोग किया जा सकता है।

गोमूत्र

गोमूत्र एक उत्कृष्ट द्रवीय खाद है तथा सीधे ही फसलों पर छिड़काव किया जा सकता है। एक लीटर गोमूत्र को 20 लीटर जल में मिलाकर आधे एकड़ फसल पर छिड़का जा सकता है। इस घोल का प्रयोग किसी भी फसल में और फसल की किसी भी अवस्था में किया जा सकता है।

वर्मीवाश

केंचुआ खाद बनाने की प्रक्रिया के दौरान बूंद-बूंद जल ऊपर से डाल कर केंचुआ खाद के गड्ढे से निकाले हुए तरल खाद को वर्मीवाश कहते हैं। इसकों बनाने हेतु नीचे छेद युक्त सीमेंट या प्लास्टिक की टंकी में मोटे रेत की 10-15 सें.मी. मोटी परत बनायी जाती है। इस टंकी में ऊपर से बूंद-बूंद जल मिट्टी के घड़े से छोड़ा जाता है जो केंचुआ खाद से गुजर कर टंकी के नीचे वाले छेद द्वारा एकत्र किया जाता है। केंचुआ खाद की प्रक्रिया शुरू होने के 10 दिन बाद एक दिन में लगभग 4 से 5 लीटर वर्मीवाश एकत्रित किया जा सकता है। एक लीटर वर्मीवाश को 15 लीटर जल में मिलाकर शाम के समय फसलों पर छिड़काव करें।

वर्मीकम्पोस्ट का प्रयोग

जैविक खेती में वर्मीकम्पोस्ट का प्रयोग जैव तकनीक में केंचुओं को विभिन्न जैविक अवशेषों एवं जैविक अवशिष्टों को प्राकृतिक जैविक रूप से विघटित करने,

मृदा को उर्वर बनाने एवं पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाने में किया जाता है। जैविक पदार्थ से भरपूर मृदा में केंचुएं जनसंख्या वृद्धि कर प्राकृतिक जैविक क्रिया यंत्र का कार्य करते हैं जिससे लाभकारी सूक्ष्मजीवों की जनसंख्या में वृद्धि होती है, रोग कारक जीवाणुओं का नाश होता है और निष्क्रिय जैव अवशेष अनेक बहुमूल्य अवयवों जैसे; जैव उर्वरक, विटामिन, एन्जाइम, प्रतिजैविक पदार्थ एवं नियामक इत्यादि में परिवर्तित हो जाते हैं। केंचुआ खाद का प्रयोग फसल बुवाई से पहले 4.0-5.0 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की दर से मृदा में मिलाकर किया जाता है। इसे अधिक प्रभावी बनाने के लिए मृदा में मिलाने के उपरांत इसे पुआल, सूखी पत्तियों या कूड़ा-करकट से मृदा की ऊपरी सतह को ढक दिया जाता है।

सारणी 3. वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग

क्रमांक	फसल का नाम	मात्रा
1.	सामान्य फसलें (गेहूं, मक्का, सरसों, सोयाबीन, बाजरा आदि)	5 टन/हेक्टेयर
2.	सब्जियां	5 से 7.5 टन/ हेक्टेयर
3	फलदार वृक्ष	5 कि.ग्रा./पौधा
4.	फूलों की क्यारियां	1 से 2 कि.ग्रा./ वर्गमीटर

जैव उर्वरकों का प्रयोग

जैव उर्वरक एक ऐसा पादप पोषण तत्व स्रोत है, जो अति-सूक्ष्म, लाभकारी, जीवित जीवाणुओं के शक्तिशाली विभेद का पीट लिग्नाइट अथवा वुड चारकोल में मिश्रण है, जो वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का भूमि में स्थिरीकरण कर मृदा में उपस्थित अविलेय तत्वों को विलेय बनाकर पौधों को पोषक तत्वों के रूप में उपलब्ध कराते हैं तथा मृदा फॉस्फोरस को घुलनशील बनाकर हारमोन्स, विटामिन इत्यादि पदार्थों को सन्तुलित मात्रा में बढ़ाते हैं। जैव उर्वरक तैयार करने की अनेक विधियां हैं। इनमें से कुछ को प्रयोगशाला के माध्यम से तैयार किया जाता है जबकि कुछ का उत्पादन किसान निजी स्तर पर कर सकते हैं। कुछ प्रमुख जैव उर्वरकों का विवरण निम्नलिखित है, जैसेः

नत्रजन तत्व की आपूर्ति हेतु जैव उर्वरक

राइजोबियम कल्चर

सहजीवी नाइट्रोजन यौगिकीकरण जीवाणु का फसल उत्पादन में अत्यधिक योगदान है। सभी दलहनी फसलों की जड़ों में असंख्य जीवाणु होते हैं। ये जीवाणु हवा से नाइट्रोजन लेकर पौधों को खाद्य रूप में प्रदान करते हैं तथा अपना भोजन पौधे से प्राप्त करते हैं। दलहनी फसलों के लिए राइजोबियम कल्चर को प्रयोग अवश्य करें। एक हेक्टेयर क्षेत्र के लिए 200 ग्राम के तीन पैकट से बीज उपचारित करें।

एजोटोबेक्टर जीवाणु खाद

ये जीवाणु मृदा में पाये जाते हैं तथा किसी प्रकार की गांठ नहीं बनाते हैं। बिना दाल वाली सभी फसलों के लिए उपरोक्तानुसार उपयोग करें। रोपाई वाली फसलों के लिए 10 लीटर जल में 2 पैकेट कल्चर घोल में 15 मिनट पौधे की जड़ों को डुबोकर रोपाई करें।

एजोस्पाइरिलम जीवाणु

यह एक सूक्ष्म जीवाणु है जो वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को मृदा में स्थिर करता है जिसे पौधे उपयोग करते हैं। ये जीवाणु पौधों की जड़ों के अन्दर पाये जाते हैं तथा खेत में नमी होने पर इनकी कार्यक्षमता बढ़ जाती है।

पी.एस.बी. कल्चर (फॉस्फोरस घोलक जीवाणु)

रसायनिक उर्वरकों द्वारा दिए गए फॉस्फोरस का बहुत बड़ा भाग भूमि में अघुलनशील होकर फसलों को मिल नहीं पाता है। पीएसबी कल्चर फॉस्फोरस को घुलनशील बनाकर फसलों को उपलब्ध कराता है। बीजोपचार उपर्युक्ताअनुसार करें या 2 कि.ग्रा. (10 पैकेट) कल्चर को 100 कि.ग्रा. गोबर की खाद में मिलाकर खेत में मिला दें।

वैम कल्चर

वैम कल्चर फॉस्फोरस के साथ-साथ दूसरे सभी तत्वों की उपलब्धता बढ़ा देता है। बीजोपचार उपरोक्तानुसार करें।

हरी खाद वाली फसलों का प्रयोग

मृदा में उर्वराशक्ति में वृद्धि हेतु सनई, ढैंचा, उड़द, मूँग, मसूर एवं बरसीम आदि फसलों को खेत में उगाकर, उसी खेत में पलटकर मृदा में मिला देने की प्रक्रिया को हरी खाद देना कहते हैं। मुख्यतः दलहनी फसलों को उसी खेत में उगाकर जुताई कर मिट्टी में मिला देते हैं। हरी खाद वाली फसलों की हरी पत्तियां या जैविक पदार्थ मृदा में जैविक तत्वों की वृद्धि करते हैं तथा पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाते हैं। इसके अतिरिक्त जीवों द्वारा रसायनिक प्रक्रिया में तीव्रता आती है तथा पोषक तत्वों का संरक्षण भी बढ़ता है। यह ध्यान रहे कि फसल पलटते समय पौधे नरम हों और हर स्थिति में फूल आने के पूर्व फसल पलट दी जाये अर्थात पलटाई का उचित समय हरी खाद वाली फसलों में फूल आने का समय होता है। सिंचित अवस्था में मानसून आने के 15 से 20 दिन पूर्व और असिंचित अवस्था में मानसून आने के तुरन्त बाद, तैयार खेत में हरी खाद की फसलों के बीज बोने चाहिए। हरी खाद की फसल का चयन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि वे शीघ्र बढ़ने वाली हो, कीट प्रतिरोधक क्षमता वाली हो, शीघ्र विघटनकारी हो, पत्तें व टहनियां काट लेने पर भी वह जीवित रहती हो एवं अधिक मात्रा में जैविक कचरा उत्पन्न करती हों।

सारणी 4. हरी खाद में नाट्रोजन (प्रतिशत)

क्रमांक	स्थानीय नाम	वैज्ञानिक नाम	नाइट्रोजन
1.	ढैंचा	सेस्बेनिया एक्युलियाटा	0.41-0.43
2.	सनई	क्रोटोलेरिया जन्सिया	0.40-0.42
3.	सैंजी	मेलिलोटस अल्वा	0.55-0.57
4.	बरसीम	ट्राईफोलियम एलेक्जेन्ड्रिनम	0.44-0.46

स्रोतः खेती, मार्च, 2017, पृ. 35

जैविक खेती में फसल अवशेष का प्रयोग

किसान गड्ढ़ा बनाकर वैज्ञानिक विधियों से गोबर की खाद एवं फसल अवशेषों की कम्पोस्ट बनाकर खेत में प्रयोग करें। मृदा में फसलों के अवशेषों के प्रयोग से जैविक कार्बन में वृद्धि के साथ-साथ कई पोषक तत्वों की उपलब्धता में भी वृद्धि होती है तथा मृदा की भौतिक सरंचना में सुधार होता है।

जैविक खेती में मृदा सौरीकरण का प्रयोग

सौर ऊर्जा के ताप प्रभाव से जैसे, जंगली जई, ओरोबें की, जोहनसन घास, गोखरू, हिरनखुरी, चैलाई आदि खरपतवारों को प्रभावी ढंग से नियंत्रित किया जा सकता है और मृदा जनित रोगों जैसे; विल्टिंग रोग, जड़ सड़न, और तना सड़न रोग आदि को कम किया जा सकता है। रोगाणुग्रस्त मृदा की अच्छी प्रकार से जुताई करने के बाद उसमें गोबर की खाद मिला दें और मृदा की सिंचाई कर दें। सिंचित मृदा को सफेद पारदर्शी और पतली 25 से 50 माइक्रॉन या 100 से 200 गेज मोटी पॉलीथीन से गर्मियों के महीनों में 4 से 6 सप्ताह तक ढक दें। इस तकनीक के अच्छे प्रभाव और ताप संचय के लिए भूमि की जुताई अच्छी प्रकार से करके भूमि को समतल कर लेना चाहिए ताकि पॉलीथीन की चादर उस पर अच्छी प्रकार से बिछाई जा सके तथा भूमि अच्छी प्रकार से जल सोख सकें।

जैविक विधि द्वारा खरपतवार नियंत्रण

खरपतवार नियंत्रण हेतु सस्य तकनीकियों जैसे; उपयुक्त फसल चक्र, हरी खाद उपयोग, बुवाई समय में परिवर्तन, पलवार आदि एवं यांत्रिक नियंत्रण, तापीय खरपतवार नियंत्रण एवं जैविक नियंत्रण विधियों का उपयोग करना चाहिए।

जैविक उपायों द्वारा कीटों एवं बीमारियों की रोकथाम

1. वायरस से फैलने वाली बीमारियों की जैविक विधियों से रोकथाम

- वायरस का संक्रमण दिखाई देते ही फसल के ऊपर नीम को 5 प्रतिशत अर्क खेत में छिडकें।
- संक्रमित पौधों को खेत से निकाल दें।
- पौधों का रस चूसने वाले कीड़ों का नियंत्रण करने के लिए 4 लीटर गौमूत्र और 100 ग्राम हींग,
- 100 ग्राम चूना लेकर सभी को एक साथ मिलाकर छिड़काव करें।

2. जैविक विधियों से फसलों में रोग प्रबंधन

- उक्ठा व जड़ गलन रोग की रोकथाम के लिए गर्मियों में गहरी जुताई करें।

- फसल चक्र एवं रोग प्रतिरोधी किस्में लगायें।
- उक्ठा व जड़ गलन, कॉलर रोट रोग की रोकथाम के लिए खड़ी फसल में ट्राईकोडर्मा की 5 कि.ग्रा. मात्रा को 100 कि.ग्रा. गोबर की खाद में मिलाकर संवर्धन कर छिड़कांव करें।
- गेहूं में बीज को गर्मी की तेज धूप में सुखाएं या गर्म जल से उपचारित करें।
- बीज को मित्र फफूंद ट्राईकोडर्मा 6 सं 8 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से उक्ठा, कॉलर रोट व जड़ गलन रोगों की रोकथाम हेतु उपचारित करें।

3. कीटों की जैविक कीटनाशियों से रोकथाम

जैविक कीट प्रबंधन के लिए उचित सस्य क्रियाएं, यांत्रिक क्रियाएं, जैविक नियंत्रण उपाय, फसल में मित्र कीटों एवं परजीवियों का उपयोग करें, जैसे;

- गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करें, जिससे भूमिगत कीटों व दीमक का नियंत्रण हो सके।
- फसल चक्र अपनाएं, कीट प्रतिरोधी किस्मों की बुवाई करें।
- उचित समय पर सिंचाई करें तथा अत्यधिक जल होने पर उचित जल निकास का प्रबंधन करें।
- ट्रेप फसल लगायें।
- प्रकाश-पाश एवं गंधपान (फेरोमोन ट्रैप) की 8 से 10/हेक्टेयर की दर से उपयोग करें।
- जैविक पोषक तत्वों का समुचित मात्रा में प्रयोग करना।
- खेत में करंज एवं नीम की खली का प्रयोग करना।
- वानस्पतिक पदार्थो जैसे, नीम, तुलसी, लेंटाना, करंज इत्यादि की पत्तियों के घोल के प्रयोग से फसलों में कीड़ों एवं बीमारियों की समस्या को कम करना।
- फसल में मित्र कीट एवं परजीवी कीट छोड़ें।
- ट्राईकोग्राम, एपेन्टालिस, ब्रेकोन, भूरे रंग के ततैया, चित्तीदार सूंड़ी कीट के पूर्ण परजीवी हैं।
- लेडी बर्ड बीटल एवं क्राइसोपरला (50, 000 लार्वा/है.) लट, प्रौढ़ हरा तैला, मोयला, सफेद मक्खी, थ्रिप्स, माइट्स आदि कीटों के अंडे व प्रथम अवस्था को खाकर जीवित रहता है।
- अमेरिकन सूंड़ी व तम्बाकू की सूंड़ी के लिए एन.पी.वी. 250 एल.ई. का छिड़कांव करें।
- सूंडियों के नियंत्रण के लिए बैसिलस थुरिन्जेन्सिस (बी.टी.) की एक कि.ग्रा. मात्रा को 500 लीटर जल में घोल बनाकर छिड़काव करें।
- दीमक नियंत्रण के लिए मित्र फफूंद मेटाराइजियम एनिसोफ्लाई 2.5 से 5 कि.ग्रा. 100 कि.ग्रा. गोबर की खाद में मिलाकर संवर्धन कर छिड़कांव करें।
- दीमक की रोकथाम के लिए नीम का तेल 4 लीटर/हेक्टेयर दूसरी एवं तीसरी सिंचाई के साथ दें।
- सूत्रकृमियों के लिए नीम की खली 1 टन प्रति हेक्टेयर बुवाई पूर्व खेत में डालें।
- चूसने वाले कीटों की रोकथाम के लिए नीम का तेल 3 मि.ली./लीटर जल में मिलाकर छिड़कांव करें।
- कीटभक्षी पक्षी जैसे; गोरिया, मैना, नीलकंठ, किंग-क्रो आदि के बैठने के लिए/हेक्टेयर 15 स्टैण्ड लगाएं।

जैविक खेती में जहरीले रसायनों का प्रयोग नहीं होता है। उपभोक्ताओं में जैविक खाद्यों की सुरक्षा और गुणवता, कृषि तंत्र की दीर्घकालिक सतत्ता और समान उत्पाक होने के प्रमाण से बढ़ रही जागरुकता से अधिक से अधिक किसान जैविक खेती अपना रहे हैं। कृषि के आर्थिक, सामाजिक, स्वास्थ्य और पर्यावरण लाभों को देखते हुए भारत सरकार भी जैविक खेती को अपनाने के लिए प्रचार-प्रसार तथा जैविक खेती को प्रोत्साहित करने के लिए अनेक योजनाएं और कार्यक्रम चला रही है।

संरक्षित खेती और हाइड्रोपोनिक्स प्रौद्योगिकी से उच्च मूल्य बागवानी फसलों का उत्पादन

मुर्तुजा हसन एवं इंद्रमणि

संरक्षित कृषि प्रौद्योगिकी केंद्र
भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012

संरक्षित खेती का मुख्य उद्देश्य फसल की निरंतर वृद्धि के लिए अनुकूल वातावरण बनाना है ताकि प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों में भी इसकी अधिकतम क्षमता से उत्पादन हो सके। संरक्षित खेती तकनीक मौसम की अनिश्चितता में न्यूनतम जोखिम के साथ सब्जियों, फूलों, उच्च गुणवता के संकर बीजों का उत्पादन करने के लिए कई फायदे प्रदान करती है और संसाधनों की दक्षता को सुनिश्चित करती है। यह तकनीक उन किसानों के लिए प्रासंगिक हो जाता है, जिनके पास छोटी भूमि है और उन्हें प्रत्येक वर्ष अपनी भूमि से अधिक फसलों का उत्पादन करने में मदद करता है। विशेष रूप से ऑफ सीजन के दौरान जब कीमतें अधिक होती हैं किसान इस प्रौद्योगिकी से लाभान्वित होंगे। खासकर पेरी-शहरी क्षेत्रों में इस तरह की फसल उत्पादन प्रणाली को एक लाभदायक कृषि-उद्यम के रूप में अपनाया जा सकता है। वर्तमान में, घरेलू और निर्यात बाजारों की मात्रात्मक और गुणात्मक दोनों जरूरतों को पूरा करने के लिए उच्च गुणवता वाली बागवानी फसलों की मांग और उत्पादन के बीच एक बड़ा अंतर है, जो कि पारंपरिक खेती प्रथाओं के साथ करना मुश्किल है। संरक्षित बागवानी में विशेष रूप से छोटे किसानों की आय में वृद्धि करने की काफी संभावना है यदि उपयुक्त तकनीकी प्रयोग में लाई जाती है।

चित्र 1: संरक्षित खेती में शिमला मिर्च का उत्पादन

संरक्षित खेती से बागवानी फसलों की उच्च गुणवता और पैदावार उनकी रोपण सामग्री, कुशल भूमि और संसाधन उपयोग के माध्यम से कई फायदे मिलते हैं। फल, सब्जी और फूलों की फसलें आम तौर पर अन्य फसलों की तुलना में 4 से 8 गुना अधिक मुनाफा देती हैं। यदि इनमें से कुछ उच्च मूल्य की फसलें संरक्षित परिस्थितियों में उगाई जाती हैं, जैसे कि ग्रीनहाउस, नेट हाउस, टनल आदि तो लाभ का यह मार्जिन कई गुना बढ़ सकता है। इस तरह की कृषि उत्पादन प्रणाली ग्रामीण क्षेत्र में आय और रोजगार का लाभदायक स्रोत प्रदान करती है। सब्जियों और कटे हुए फूलों में कटाई के बाद की मात्रा बहुत अधिक (20-30%) होती है, जिसे काफी कम किया जा सकता है और फसलों को वर्ष के दौर में ले जाकर संरक्षित खेती तकनीकों के माध्यम से उत्पादकता में 5-10 गुना की बढ़ोतरी की जा सकती है। संरक्षित खेती में स्थानीय उद्यम, सामाजिक सशक्तिकरण और उत्पादकों के सम्मान को बढ़ावा देने के लिए बहुत अधिक उद्यमशीलता मूल्य और लाभ अधिकतमकरण है। IPM रणनीति से जुड़े पर्यावरणीय सुरक्षित तरीके उच्च मूल्य के उत्पादों के खतरे को कम करते हैं। उच्च तकनीक बागवानी और संरक्षित खेती के लिए उत्पादन को सबसे महत्वपूर्ण उत्पादन तकनीक में से एक माना गया है। यह उच्च उत्पादकता प्राप्त करने और बागवानी उत्पादों की गुणवता को बढ़ाने में मदद करता है। संरक्षित खेती में बहुत अधिक फसल पानी और पोषक तत्वों की दक्षता का उपयोग करने के लिए ड्रिप फर्टिगेशन के माध्यम से पानी और पोषक तत्वों का सटीक अनुप्रयोग संभव है।

तालिका-1. ड्रिप सिंचाई प्रणाली द्वारा संरक्षित खेती में संब्जी उत्पादन/इकाई (1000 वर्ग मीटर) सब्जियों की उपज व पानी बचत व कुल आमदनी

क्र.सं.	सब्जी फसल व अवधि	उत्पादन (प्रति इकाई टन में)	प्रति इकाई कुल आमदनी (रु.)	पानी की बचत
1.	टमाटर (9 माह)	20	400,000	60
2.	खीरा (4 माह)	4	1,20,000	70
3.	शिमला मिर्च (9 माह)	6	300,000	65

संरक्षित खेती तकनीक हमारे देश के लिए एक अपेक्षाकृत नई तकनीक है। हमारे देश में संरक्षित खेती के अंतर्गत आने वाला कुल क्षेत्रफल लगभग एक लाख हेक्टेयर है। पिछले पांच वर्षों के दौरान इस क्षेत्र में बहुत अच्छा विकास हुआ है। संरक्षित खेती के क्षेत्र में अग्रणी राज्य महाराष्ट्र, कर्नाटक, हिमाचल प्रदेश, उत्तर-पूर्वी राज्य, उत्तराखंड, तमिलनाडु और पंजाब हैं। संरक्षित खेती में उगाई जाने वाली प्रमुख फसलें हैं टमाटर, शिमला मिर्च, ककड़ी, खरबूजे, गुलाब, tरबेरा, कार्नेशन और गुलदाउदी। संरक्षित खेती में उगाई जाने वाली नर्सरी आय और रोजगार सृजन के लिए बहुत लोकप्रिय उद्यम बन रही है।

आईएआरआई नई दिल्ली में सेंटर फॉर प्रोटेक्टेड कल्टीवेशन टेक्नोलॉजी (सीपीसीटी) ने संरक्षित खेती तकनीक के क्षेत्र में बहुत अच्छा काम किया है। केंद्र ने कई संरक्षित खेती प्रौद्योगिकियों का प्रदर्शन और मानकीकरण किया है, विभिन्न राज्यों और केंद्र सरकार की एजेंसियों से संबंधित किसानों, अधिकारियों और उद्यमियों को प्रशिक्षण दिया, सक्रिय खेती और संरक्षित खेती के विभिन्न पहलुओं से संबंधित स्नातकोत्तर अध्ययन किए। केंद्र ने पूरे देश के किसानों और अधिकारियों के लिए संरक्षित संवर्धन प्रौद्योगिकियों से संबंधित 100 से अधिक प्रशिक्षण कार्यक्रम किए हैं।

सीपीसीटी, आईएआरआई, पूसा, नई दिल्ली में विकसित और मानकीकृत महत्वपूर्ण संरक्षित खेती प्रौद्योगिकियों की सूची।

1. प्लग ट्रे नर्सरी स्थापना प्रौद्योगिकी
2. संरक्षित संस्कृति संरचनाओं का डिजाइन
3. ऑफ-सीजन वेजीटेबल कल्टीवेशन के लिए प्लास्टिक लो टनल टेक्नोलॉजी
4. उच्च गुणवता वाले टमाटर और ककड़ी की संरक्षित खेती तकनीक
5. कीट प्रूफ नेट हाउस टेक्नोलॉजी
6. ऑफ सीजन वेजीटेबल कल्टीवेशन के लिए टनल टेक्नोलॉजी
7. कम दबाव ड्रिप प्रौद्योगिकी

बागवानी फसलों के लिए हाइड्रोपोनिक्स प्रौद्योगिकी

हाइड्रोपोनिक्स तकनीकी में फसलों का मृदारहित उत्पादन होता है, जिसमें जल अथवा मृदारहित माध्यम में फसल उगायी जाती है। इस तकनीकी के अर्न्तगत पौधो की जड़े जल अथवा अन्य माध्यमों में घुले हुए संतुलित व पौष्टिक तत्वों का उपयोग के संपूर्ण एवं स्वस्थ विकास करती है। हाइड्रोपोनिक्स शब्द ग्रीक भाषा के हाइड्रो अर्थात जल एवं पोनोस अर्थात परिश्रम से मिल कर बना है, जिसका अर्थ "जल कार्यकारिणी" है। हाइडोपोनिक्स अथवा मृदा रहित पौध उत्पादन विभिन्न तकनीको का जैसे मृदा रहित ठोस माध्यम एवं पौष्टिक घोल आदि का सम्मिश्रण है। मृदारहित खेती में बागवानी फसलों की विभिन्न फसले जैसे सब्जियाँ, फूल एवं फल का उत्पादन विभिन्न माध्यमों जैसे ग्रोबैग, पौट, पाईप, नलिका एवं ट्रे इत्यादि में होता है।

चित्र 2: हाइड्रोपोनिक्स तकनीकी से बागवानी फसलों का उत्पादन

हाइड्रोपोनिक्स खेती के मुख्य लाभः

- मृदा रहित रोगाणुओं का परिवर्जन।
- मृदा निर्जीवीकरण व उपचार की बचत।
- निम्न गुणवता वाली मिट्टी के क्षेत्रो में स्वस्थ फसल उत्पादन।
- पौष्टिक तत्वों का निर्जीव माध्यमों में विधिमात्र का नियंत्रण।
- वातावरणीय मानदंडों का अनुकलन।
- उच्च एवं गुणवतापूर्ण उत्पादन।
- उच्च जल एवं उर्वरक प्रयोग क्षमता।
- वर्षभर फसल उत्पादन।

हाइडोपोनिक्स खेती की विभिन्न तकनीकियाँ

- तरल माध्यम (उर्वरक फिल्म तकनीक, एनएफटी)
- गहन प्रवाह तकनीक (डीएफटी)
- जड़ डुबक तकनीक, तरल पलावी तकनीक, कैपिलरी तकनीक
- ठोस माध्यम (लटक बैग तकनीक, ग्रो बैग तकनीक)
- ट्रे अथवा नांद तकनीक, मृदा रहित गमला तकनीक
- एरोपोनिक्स (वाष्पित जड़ तकनीक, धुंध सिंचित तकनीक)

हाईड्रोपोनिक्स खेती के लिए जल एवं उर्वरक प्रबंधन

ड्रिप सिंचाई एवं फर्टिगेशन मृदा रहित हाइड्रोपोनिक्स खेती में जल एवं उर्वरक प्रबंधन की सटीक तकनीक है। इस पद्धत्ति द्वारा इन लाइन एवं स्टेक ड्रिपर की मदद से जल एवं उर्वरक सूचीकरण का विशेष महत्व है। ईसी, पीएच एवं फर्टिगेशन घोल आर्द्रता को पौधों के विभिन्न अवस्था में समयानुसार मापा जाता है तथा इस की नियंत्रित मात्रा रखी जाती है। मुख्य एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों को पौधों के आवश्यक्तानुसार जल घोल के साथ डाली जाती है। जल घोल तथा पौधों के जड़ों का तापमान वातावरण के अनुसार रखी जाती है। सामान्यतः 100-150 लीटर टैंक में स्टॉक घोल बनाई जाती है तथा पौधों को आवश्यतानुसार 1-3 लीटर स्टॉक घोल को 1000 लीटर जल में मिलाया जाताहै। इस घोल को ड्रिप फर्टिगेशन द्वारा पौधों में डाला जाता है।

हाईड्रोपोनिक्स खेती में भारत सरकार की मदद

भारत सरकार के निम्नलिखित विभाग हाइड्रोपोनिक्स खेती में मदद करते हैं।

- राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड (एनएचबी)
- राष्ट्रीय उघानिक मिशन (एनएचएम)

तालिका-2 मृदा रहित हाइडोपोनिक्स संरक्षित खेती में सब्जी व फूलों का उत्पादन प्रति इकाई (200 वर्ग मीटर) कुल उपज व पानी बचत व आमदनी

क्र.सं	सब्जी फसल व अवधि	उत्पादन (कट पुष्प)/(प्रति इकाई किलों में)	प्रति इकाई कुल आमदनी (रु.)	पानी की बचत
1.	गुलदाउदी (08 माह)	20,000	50,000/-	65
2.	खीरा (4 माह)	800	24,000/-	70
3.	शिमला मिर्च (9 माह)	1200	60,000/-	60

पीड़कनाशियों का सुरक्षित प्रयोग: क्या करें और क्या न करें

प्रिया सैनी, सुमन गुप्ता एवं अमन कुमार

कृषि रसायन संभाग

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

पीड़कनाशी जैविक सक्रिय पदार्थ है जो उनके विषैले और हानिकारक प्रभावो के कारण पीड़को को मारने के लिए डिजाइन किए गए हैं। इनका प्रयोग मानव, पशुओं पीड़को और परागण को पर प्रतिकूल प्रभाव डालने की क्षमता रखता है। इसलिए इनका प्रयोग सावधानीपूर्वक करना चाहिए।

कीटनाशकों का चयन

नाशीजीवी प्रबंधन मे कीटनाशी प्रमुख घटक है। इनकी छुपी हुई विषाक्त प्रकृति के कारण यह मानव, पशुओ और पर्यावरण के लिए जोखिम उत्पन्न करते हैं। एक कीटनाशी के चयन से पहले यह महत्वपूर्ण है कि उसके उत्पादन लेबल पर लिखे हुए दिशा-निर्देशों को अच्छी तरह से पढ़ और समझ लेना चाहिए।

पीड़कनाशी के चयन और खरीद से पहले याद रखने वाले प्रमुख बिंदु

- हमें पीड़कनाशी की ठीक जानकारी होनी चाहिए। गलत जानकारी से धन और समय की बरबादी हो जाती है।
- हमें उत्पादों को ऐसे फार्मूलेशन के साथ चयन करना चाहिए कि जिससे कम से कम उद्भासन हो।
- पीड़कनाशीयों की खरीद पंजीकृत डीलर से ही करनी चाहिए।
- लेबल पर पीड़क की जांच करें और सुनिश्चित करें कि पीड़क की कितनी सक्रियता सहन की जा सकती है।
- एक सीजन के लिए जितनी जरूरत हो उतनी ही कीटनाशी की खरीद करें।
- हमें लेबल पर यह जांच कर लेनी चाहिए कि उत्पाद का निर्माता, पंजीकरण नंबर और अवसान की तिथि का विवरण लेबल पर दिया है या नहीं।
- हमें उत्पाद के सक्रिय तत्व के बारे मे पता होना चाहिए कि क्या यह विशेष पीड़क समूह को लक्षित करता है या विस्तृत समूह के पीड़कों को।
- जब भी उत्पाद का प्रयोग करें, प्रत्येक बार संपूर्ण लेबल को अच्छी तरह से पढ़ें । लेबल का अनुसरण करने से जोखिम को कम और उत्पादक के द्वारा निर्मित उत्पाद को ठीक तरह से उपयोग मे लाया जा सकता है।
- बिना सीलबंद वाले कंटेनर से कीटनाशी को नहीं खरीदना चाहिए।

कीटनाशी के लेबल को पढ़ना

- कीटनाशी के प्रयोग से पहले यह आवश्यक है कि कीटनाशी के डिब्बे के लेबल के ऊपर लिखे सभी दिशा निर्देशों को ध्यानपूर्वक पढ़ लेना चाहिए।
- कीटनाशी के लेबल के ऊपर सभी सूचनाएं विस्तार से दी हुई होती है कि उत्पाद को किस प्रकार और कानूनी रूप से कैसे प्रयोग किया जाना चाहिए। लेबल पर लिखे दिशा निर्देशों का पालन करके ही जोखिमों को कम और होने वाले लाभ को अधिक किया जा सकता है।
- अधिकतर कीटनाशियों के लेबल पर या तो सावधान, चेतावनी या खतरा लिखा होता है। 'सावधानी' शब्द उत्पाद की कम विषालुता को प्रदर्शित करता है। "चेतावनी" शब्द मध्यम विषालुता को प्रदर्शित करता है। और "खतरा" शब्द अधिकतम विषालुता को प्रदर्शित करता है।

सुरक्षित भंडारण

- कीटनाशियों को उनके असली कंटेनरों में ही भंडारित किया जाना चाहिए। उनके लबेलों को कंटेनरों से अलग नहीं करना चाहिए और पठनीय बने रहने देना चाहिए।
- कीटनाशियों को बच्चो, गैर जिम्मेदार और मानसिक रूप से विक्षिप्त लोगों की पहुंच से दूर रखना चाहिए।
- हमें भंडारण निर्देशों का अच्छी तरह से पालन करना चाहिए। समान्यतः कीटनाशियों के लिए उपयुक्त तापमान 4- 35 डिग्री सेन्टीग्रेड होता है क्योंकि अधिक तापमान पर कुछ कीटनाशियों की रसायनिकी परिवर्तित हो जाती है।
- कीटनाशियों को धूप और वर्षा मे खुला नहीं छोडना चाहिए।

स्प्रे घोल को तैयार करते समय सावधानियां

सभी कीटनाशियों का एक जोखिम स्तर होता है। यदि हम पीड़कनाशीयों के साथ शाकनाशी, कीटनाशी या सफाई उत्पादको, जिनमें प्रतिजीवाणुक क्षमता होती है ,की तरह नियमित आधार पर प्रयोग करते हैं तो उद्भासन का जोखिम अधिक बढ़ जाता है।

- जितना आवश्यक हो उतनी ही मात्रा में कीटनाशी का मिश्रण तैयार करें।
- हमें कीटनाशी के प्रयोग करने की ऐसी विधि का चयन करना चाहिए जिससे वह कम से कम संपर्क में आएं।
- कीटनाशी का प्रयोग करते समय हमें उचित व्यक्तिगत सुरक्षा उपकरण (पीपीई किट) पहनने चाहिए। उदाहरण के लिए : लंबी बाजू वाली कमीज, लंबा पाजामा बिना सोखते वाले दस्ताने (जो न तो चमड़े के बने हो और न ही कपड़े के), रबड़ के जूते, फेस मास्क इत्यादि का प्रयोग करना चाहिए।
- हमें स्प्रे घोल को सूंघना नहीं चाहिए।
- 24 घंटे से रखे हुऐ कीटनाशी घोल का स्प्रे नहीं करना चाहिए।
- ग्रेनूल को स्प्रे जल के साथ नहीं मिलना चाहिए।
- कीटनाशी को मिलाते और प्रयोग करते समय धूम्रपान और कुछ भी खाना नहीं चाहिए।

प्रयोग करते समय सावधानियां

- कीटनाशी के प्रयोग करने के लिए उपयुक्त नोजल और उपकरण का प्रयोग करना चाहिए।
- शाकनाशी और कीटनाशी के लिए अलग -अलग स्प्रेयर का प्रयोग करना चाहिए।
- कीटनाशियों के प्रयोग करते समय बाहर रखे सज्जाकारी मछलियों के एक्वेरियम को पूरी तरह से ढक देना चाहिए।
- खराब नोजल और खराब स्प्रेयर का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
- जाम हुऐ नोजल को मुंह से साफ नहीं करना चाहिए।
- बहुत जायदा गरम और तेज हवा वाले दिन कीटनाशी का प्रयोग नहीं करना चाहिए। कीटनाशी का कुछ सक्रिय तत्व अधिक तापमान और हवा के कारण अलक्षित सतहों पर पहुंच सकता है।
- जितना संभव हो उतना लक्ष्य के समीप स्प्रे करना चाहिए। जिससे हमें अच्छी कवरेज मिलती है और कीटनाशी के अनावश्यक बहाव से बचा जा सकता है।
- हमें कीटनाशियों का निर्धारित मात्रा से अधिक प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि कीटनाशियों के अधिक प्रयोग से उनके बहने और रिसाव की संभावना बनी रहती है जिससे जल आपूर्ति दूषित हो सकती है। अधिक स्प्रे से फलों और सब्जियों पर हानिकारक अवशेष रह जाते हैं। जिससे अलक्षित प्रजातियाँ भी प्रभावित होती हैं।
- परागणकों के लिए हानिकारक कीटनाशियों का प्रयोग उचित और निर्धारित समय पर ही करना चाहिए।
- जब पेड़ों को कीटनाशी से उपचारित कर रहे होते हैं तो उस समय हमें पक्षियों के घोंसलों पर स्प्रे नहीं करना चाहिए।

- कीटनाशियों का प्रयोग खाद्य फसलों और बगीचों मे करते समय लेबल पर लिखे निर्देशों जैसे - पुनः प्रवेश समय, कटाई का समय, प्रतीक्षा समय का पूर्ण पालन करना चाहिए। यह अलग-अलग कीटनाशी और फसलों के लिए अलग-अलग हो सकता है।

स्प्रे उपरांत की गतिविधियां

- उद्भासन कम करने और पीपीई किट (व्यक्तिगत सुरक्षा उपकरणों) को अधिक समय तक चलाने के लिए किट को बार-बार धोकर रखना चाहिए ताकि इसका प्रयोग दोबारा किया जा सके।
- परिवार के लोगों को उद्भासन से बचाने के लिए, घर मे प्रवेश करने से पहले अपने जूते, कपड़े उतार कर स्नान करना चाहिए और स्वच्छ कपड़े पहनने चाहिए।
- कीटनाशी के प्रयोग करने के बाद प्रत्येक बार व्यक्तिगत सुरक्षा उपकरणो को जितना जल्दी संभव हो उतनी जल्दी धो देना चाहिए।

शेष बचे हुए कीटनाशी का निपटान

- पर्यावरण को सुरक्षित रखने और दुर्घटना से बचाव के लिए कीटनाशी का निपटान उचित तरीके से ही करना चाहिए।
- बचे हुऐ कीटनाशी को सिंचाई की नहर, नाली तालाब, कुएं और जलधारा में नहीं गिराना चाहिए।
- स्प्रेयर मशीन, डिब्बे, छड़, मापन, कप, इत्यादि को डिटर्जेंट से अच्छी तरह से धोना देना चाहिए। धोये हुए पानी को किसी बंजर जमीन या प्रयोग में न आने वाले किसी बायो बेड पर गिरा देना चाहिए।

आपातकाल

सभी सावधानियों को बरतने के बावजूद भी कीटनाशियों के प्रयोग करते समय कुछ दुर्घटनाएं हो सकती है। जहरखुरानी के लक्षण तुरंत भी प्रकट हो सकते हैं और कुछ घंटे बाद भी कीटनाशी के जहरखुरानी लक्षणो के प्रति सजग रहना बहुत आवश्यक है। यदि लक्षण प्रकट होते हैं तो तुरंत नजदीकी डॉक्टर से संपर्क करना चाहिए।

आलस्य मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है और उद्यम सबसे बड़ा मित्र, जिसके साथ रहने वाला कभी दुखी नहीं होता।

- भर्तृहरि

विविधा....

आत्मनिर्भर भारत हेतु कृषि क्षेत्र मददगार

रणबीर सिंह, शिवाधर मिश्र एवं राज सिंह

जैव पदार्थ उपयोग, सस्य विज्ञान संभाग इकाई
भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास का इंजन है और इससे सर्वाधिक लोगों को रोजगार मिलता है। हमारे देश की वैश्विक तीव्रगति से बढ़ती जनसंख्या के पालन पोषण एवं अन्य आवश्यकताओं की मुख्य जिम्मेदारी कृषि पर ही आधारित है। कुल कार्य बल की 54.6 प्रतिशत जनसंख्या कृषि एवं उससे संबद्ध क्षेत्र के कार्यकलापों में लगी हुई है। भारत की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या और 43 प्रतिशत रोजगार लोगों को कृषि क्षेत्र में मिला हुआ है। कृषि मंत्रालय के अनुसार, वित्त वर्ष 2020-21 के लिए खाद्यान्न का उत्पादन लक्ष्य 298.3 मिलियन टन है, जबकि वर्ष 2019-20 में खाद्यान्नों का 29.50 करोड़ टन रिकॉर्ड उत्पादन हुआ। 18.50 करोड़ टन दुग्ध उत्पादन के साथ हम विश्व में प्रथम स्थान पर हैं। बागवानी-फल, सब्जियों का उत्पादन भी 32 लाख टन चीनी उत्पादन कर हम विश्व में प्रथम स्थान पर रहे। केवल खाद्य तेलों या तिलहन को छोड़कर शेष लगभग सभी कृषि एवं खाद्य पदार्थों का आवश्यकता से अधिक उत्पादन हो रहा है। वर्ष 2019-20 के आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार कृषि का कुल सकल मूल्य संवर्धन (जीवीए) में मात्र 16.5 प्रतिशत योगदान रहा है। इस वित्त वर्ष में लॉकडाउन के कारण देश की विकास दर में भारी गिरावट आई, पर कृषि क्षेत्र में विकास दर 3.4 प्रतिशत रही। कोविड महामारी के कारण कृषि की यह विकास दर काफी उत्साहवर्धक है। अब कृषि क्षेत्र आवश्यकता से अधिक उत्पादन कर रहा है।

भारत कृषि क्षेत्र में आत्म निर्भर बन चुका है। आजादी के बाद भारत ने कृषि क्षेत्र में अभूतपूर्व विकास किया है। उत्पादन के मामले में भारत ने कई देशों को पीछे छोड़ दिया है। भारत दालों का सबसे बड़ा उत्पादक है। चीनी का यह दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक है और कपास का तीसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश है। भारत पशुधन के मामले में भी संपन्न राष्ट्र है। जिस कारण भारत दुनिया का सबसे बड़ा दूध और मक्खन उत्पादक भी है। आत्मनिर्भर भारत के रूप में नवीनतम पहल से आरंभ करने के साथ कृषि विपणन में अति-आवश्यक सुधारों और अनुबंध कृषि में कदम रखते हुए निजी कंपनियों के साथ अपनी कीमत तय करना और भूमि लगान सुधारों के साथ सरकार ने लाखों किसानों और कृषि श्रमिकों, जिनमें पशुपालक और मछुआरे सम्मिलित है, को समाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए कुछ अनूठे नीतिगत फैसले लिए हैं। भारत में कोविड-19 के संकट के समय में, जब विश्व की अर्थव्यवस्था के पहिए की रफ्तार धीमी पड़ गई थी, तब भारत के किसानों ने गांवों में उपलब्ध साधनों से ही बंपर पैदावार ली। लॉकडाउन में फसल कटाई का काम सामान्य गति से जारी रहा और उपार्जन भी पिछली बार से अधिक रहा है, खरीफ की फसलों की बुवाई भी पिछली बार से 45 प्रतिशत अधिक रही है। केंद्रीय कृषि एवं किसान कल्याण मंत्री श्री नरेन्द्र सिंह तोमर ने कृषि क्षेत्र में प्रगति हेतु निजी निवेश को बढ़ाने की आवश्यकता पर बल दिया है। इससे कृषि क्षेत्र में समृद्धि बढ़ेगी, जिससे देश में आत्मनिर्भरता बढ़ेगी और देश में समृद्धि आएगी।

आत्मनिर्भरता शब्द पिछले कुछ दशकों में भारत के शब्दकोश से गायब ही हो गया था। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने इसे सम्मान दिया है और एक बार फिर हमारे चिंतन में इसे स्थान दिया है। प्रधानमंत्री ने कोविड-19 महामारी से पहले तथा बाद की दुनिया के बारे में बात करते हुए कहा कि 21वीं सदी के भारत के सपने को साकार करने के लिये देश को आत्मनिर्भर बनाना जरूरी है। संपूर्ण विश्व में कोविड-19 महामारी और लंबे समय तक आर्थिक गतिविधियां ठप्प रहने के कारण सामाजिक-आर्थिक रूप से कमजोर और खतरे में पड़े गरीब, विशेषकर

प्रवासियों, दिहाड़ी मजदूरों और ठेका मजदूरों के बीच आजीविका पर इस अभूतपूर्व स्थिति का प्रभाव स्थिति देखते हुए प्रधानमंत्री ने 12 मई, 2020 को आत्मनिर्भर भारत अभियान आरंभ करने का आह्वान किया।

आत्मनिर्भरता का तात्पर्य यह होता है-किसी वस्तु अथवा कार्य हेतु स्वयं पर निर्भर रहना। हम अपने चारों ओर नजर डालें, तो हमें पता चलता है कि प्रकृति में सभी जीव-जन्तु भी आत्मनिर्भर हैं। उन्हें भोजन के लिए दूसरों पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। कुछ पशु-पक्षी जन्म लेने के उपरांत ही चलने-फिरने एवं भोजन प्राप्त करने में सक्षम हो जाते हैं। परंतु मानव के साथ ऐसा नहीं है, उसे जन्म के बाद कुछ वर्षों तक दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। अगर ये निर्भरता अवधि बढ़ती है, तो ये उस व्यक्ति के साथ-साथ राष्ट्र पर भी भारी पड़ सकती है। आत्मनिर्भरता केवल व्यक्ति के लिए ही नहीं, राष्ट्र के लिए भी आवश्यक है। दूसरे शब्दों में आत्मनिर्भरता का अर्थ है-अपनी क्षमताओं और अपने प्रयत्नों पर आश्रित रहकर कार्य करना। यह गुण आने से व्यक्ति को दूसरों के सहारे की आवश्यकता नहीं रहती। आत्मनिर्भर का अर्थ यह भी है कि अपने ऊपर विश्वास रखना। भाग्य के सहारे न बैठकर अपनी क्षमताओं का विकास करना। आत्मनिर्भरता के संबंध में पूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गांधी ने कहा था कि ''एक राष्ट्र की शक्ति उसकी आत्मनिर्भरता में है, दूसरों से उधार लेकर काम चलाने में नहीं'' आत्मनिर्भरता से ही मानव की प्रगति संभव है। आत्मनिर्भर राष्ट्र अपने नागरिकों और समाज का सक्षम विकास कर सकता है।

आत्मनिर्भर भारत के स्तंभ

आत्मनिर्भर भारत अभियान की भव्य इमारत पांच मजबूत स्तंभों पर टिकी हैः

पहला स्तंभ है अर्थव्यवस्था- एक ऐसी अर्थव्यवस्था (इकॉनॉमी) जो वृद्धिशील परिवर्तन के स्थान पर बड़ी उछाल पर आधारित हो।

दूसरा स्तंभ है अवसंरचनाः ऐसी अवसंरचना जो आधुनिक भारत की पहचान बने।

तीसरा स्तंभ है प्रौद्योगिकीः एक ऐसी व्यवस्था प्रणाली जो गत शताब्दी की रीति-नीति, बल्कि 21वीं सदी के सपनों को साकार करने वाली प्रौद्योगिकी प्रवृत्त व्यवस्थाओं पर आधारित हो।

चैथा स्तंभ है गतिशील जनसांख्यिकीः हमारे देश की जनसांख्यिकी जो दुनिया के इस सबसे बड़े जनतंत्र की ताकत है। आत्मनिर्भर भारत के लिए ऊर्जा का स्रोत है।

पांचवा स्तंभ है मांगः भारत की मांग और आपूर्ति श्रृंखला की पूरी क्षमता का उपयोग किया जाना चाहिए। देश में मांग बढ़ाने के लिए और इस मांग को पूरा करने के लिए हमारी आपूर्ति श्रृंखला के प्रत्येक पक्ष को सशक्त बनाने की जरूरत है। हम अपनी मिट्टी की खुशबू और अपने मजदूरों के पसीने से बनी अपनी आपूर्ति श्रृंखला और आपूर्ति व्यवस्था को मजबूत बनाएंगे।"

आत्मनिर्भर भारत मिशन के चरण

मिशन को दो चरणों में लागू किया जाएगाः-

- **प्रथम चरणः** इसमें चिकित्सा, वस्त्र, इलेक्ट्रॉनिक्स, प्लास्टिक, खिलौने जैसे क्षेत्रों को प्रोत्साहित किया जाएगा ताकि स्थानीय विनिर्माण और निर्यात को बढ़ावा दिया जा सके।
- **द्वितीय चरणः** इस चरण में रत्न एवं आभूषण, फार्मा, स्टील जैसे क्षेत्रों को प्रोत्साहित किया जाएगा।

आत्मनिर्भरता के लाभ

किसी भी दृष्टि से आत्मनिर्भरता मानव, परिवार, समुदाय, प्रदेश एवं राष्ट्र का सबसे बड़ा गुण होती है और उसके लिए सबसे बड़ा आमदनी का सहारा बनती है। व्यक्ति यदि आत्मनिर्भर होगा तो उसे दूसरों की सहायता की आवश्यकता कम से कम पड़ेगी और किसी भी संकट की घड़ी में वह उसका सामना अधिक मजबूती से कर सकेगा और दूसरों पर आश्रित नहीं रहेगा। व्यक्ति हो या देश आत्मनिर्भरता सबके लिए एक उत्तम गुण है। मनुष्य को जीवन में दूसरों पर भरोसा न कर आत्मनिर्भर और आत्म विश्वासी होना चाहिए। दूसरे शब्दों में आत्म-सहायता ही उसके जीवन का मूल सिद्धांत, मूल आदर्श एवं उसके उद्देश्य का मूल-तंत्र होना चाहिए। असंयत

स्वभाव तथा मनुष्य का परिस्थितियों से घिरा होना, पूर्णरूपेण आत्मविश्वास के मार्ग को अवरुद्ध सा करता है। आत्मनिर्भर व्यक्ति को पृथ्वी और स्वर्ग दोनों जगह सम्मानित किया जाता है। वह व्यक्तियों के बीच प्रशंसा का पात्र बनता है। वह प्रशंसा, प्यार व आदर प्राप्त करके प्रसिद्धि, खुशहाली एवं यशस्वी बनता है। वह लोगों का नेतृत्व करता है। जनता तन-मन-धन से उस पर विश्वास करती है तथा उसकी बुद्धिमता और सक्षमता पर विश्वास रखती है।

कृषि में आत्मनिर्भर भारत के अवसर

1. **सब्जियों उत्पादन से आत्मनिर्भरता:** सब्जियों की खेती भी बहुत लाभकारी है। प्रत्येक मौसम में सब्जियों की खेती करने से एक वर्ष में औसतन आमदनी लगभग एक लाख रूपये प्रति एकड़ हो सकती है। सब्जियों की पैदावार बढ़ाने में उन्नत संकर किस्मों व उत्तम गुणों के बीजों का बड़ा योगदान है। स्वयं परागण वाली सब्जियों यथा- मटर, सेम, बांकला, टमाटर, मिर्च, लोबिया या ग्वार की उन्नत किस्मों के बीज थोड़ी-सी जानकारी के साथ किसान भाई स्वयं बना सकते हैं। परपरागण वाली सब्जियों यथा- लौकी, तोरई, करेला, खीरा, ककड़ी, खरबूजा, टिंडा, फूलगोभी, पत्तागोभी, गांठगोभी, मूली, शलजम, गाजर, प्याज, पालक, ब्रोकोली इत्यादि व संकर किस्मों के बीज किसान कम जानकारी व प्रशिक्षण के साथ सफलतापूर्वक पैदा कर सकते हैं। ऐसा करने से सब्जियों की खेती में होने वाले खर्च को भी कम किया जा सकता है। साथ ही पढ़े-लिखे युवा सब्जी बीज उत्पादन को एक व्यवसाय के रूप में अपनाकर अपनी आमदनी भी बढ़ा सकते हैं।

2. **पुष्पोत्पादन से आत्मनिर्भरता:** ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि योग्य भूमि की कमी व कम आमदनी के कारण रोजगार के अवसर कम होते जा रहे हैं। ऐसे में फूलों की खेती को रोजगार के रूप में अपनाया जा सकता है। फूलों की व्यवसायिक खेती आमदनी का सबसे अच्छा स्रोत माना गया है। किसान फूलों की खेती द्वारा अपनी आय को कई गुना बढ़ा सकते हैं। फूलों की खपत, उपयोग एवं खरीद शहरों के पास अधिक है, इसलिए फूलों की परिनगरीय खेती करने से अधिक आय प्राप्त की जा सकती है।

3. **फलोत्पादन से आत्मनिर्भरता:** फलों की खेती अनाज वाली फसलों की तुलना में अधिक लाभप्रद होती है। किसानों की आमदनी बढ़ाने और खेती में बदलाव लाने के लिए फलों की खेती आज आवश्यकता बनती जा रही है। नई तकनीकों को अपनाकर अनाज वाली फसलों के साथ फलों की खेती कर पैदावार और आमदनी में अधिक वृद्धि की जा सकती है। सामान्य सस्य फसलों की खेती के लिये 143 श्रमिक दिवस की आवश्यकता होती है, जबकि फलोत्पादन के लिए 860 श्रमिक दिवस की आवश्यकता होती है। फल वृक्ष के पौधशाला लगाने से लेकर फलों के तोड़ने तक दक्ष श्रमिकों की विशेष आवश्यकता होती है। इसे व्यवसाय के रूप में अपनाकर रोजगार के अनेक अवसर पैदा किए जा सकते हैं। अन्य फसलों की अपेक्षा फलों की उपज प्रति इकाई क्षेत्रफल में अधिक होती है, साथ ही इसकी कीमत भी अच्छी मिलती है। इस प्रकार प्रति इकाई क्षेत्र से आमदनी अधिक होती है। अतः फल उत्पादन व फल आधारित व्यवसाय आर्थिक लाभप्रद हो सकता है, जो रोजगारपरक भी है।

4. **कृषि-वानिकी से आत्मनिर्भरता:** कृषि-वानिकी भूमि प्रबंधन की ऐसी पद्धति है जिसके अंतर्गत एक ही भूखंड पर कृषि फसलों और बहुद्देशीय पेड़ों/झाड़ियों के उत्पादन के साथ-साथ पशुपालन भी किया जाता है। कृषि-वानिकी प्रबंधन से किसानों को स्व-रोजगार के साधन प्राप्त होते हैं और उनमें आत्मनिर्भरता विकसित होती है। कृषि-वानिकी से वर्षभर कुछ न कुछ कार्य मिलता रहता है, जैसे; पौधशाला की देख-रेख, पौध रोपण, कलम बांधना, निराई-गुड़ाई, रोग तथा कीड़ों से बचाव हेतु दवा का छिड़काव, फलों की तुड़ाई, डिब्बाबंदी, बाजार में विपणन, गड्ढों में खाद डालना, गोंद, छाल, पेड़ों के बीज तथा ईंधन की लकड़ी एकत्र करना आदि, कार्य कृषि-वानिकी पर निर्भर करते हैं। इसके साथ-साथ कुटीर उद्योगों के लिए कच्चे माल की आपूर्ति भी किसानों द्वारा की जाती है। इससे उनमें आत्मनिर्भरता प्राप्त होती है।

5. **पौधशाला से आत्मनिर्भरता:** भारत में वांछित उन्नत किस्मों की सब्जियों, फूलों, शोभाकारी वृक्षों, फलदार-वृक्षों की पौध की मांग बढ़ रही है। अच्छी गुणवता वाले फल, फूल, सब्जियों व सजावटी पौधों को नर्सरी से प्राप्त किया जा सकता है। यही कारण है कि आज नर्सरी भी अच्छी आमदनी का व्यवसाय बन गया है। नर्सरी स्थापना के लिए जिला उद्यान अधिकारी के माध्यम से राष्ट्रीय बागवानी मिशन के अंतर्गत आर्थिक सहायता दी जा रही है। जो व्यक्ति पौध की नर्सरी लगाना चाहते हैं, वे इसका लाभ ले सकते हैं।

6. **बीज उत्पादन से आत्मनिर्भरता:** बीज, कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता की धुरी है। वर्तमान समय में रोजगार के कम अवसर होने के कारण बीज उत्पादन एवं बीज विक्रय को नवयुवकों ने अपनी जीवकापार्जन का साधन बनाया। अधिकांश बीज विक्रेता तथा बीज उत्पादक किसानों के मध्य अपनी शाख बनाए रखने हेतु उत्तम ही नहीं सर्वोत्तम गुणवता के बीज का व्यवसाय करते हैं, इस व्यवसाय में व्यक्ति को धैर्य का धनी होना चाहिए। अच्छे बीजों से फसलों की पैदावार में 25 से 35 प्रतिशत तक वृद्धि कर सकते हैं।

7. **पशुपालन से आत्मनिर्भरता:** पशुपालन, भारतीय कृषि का अभिन्न अंग है। भूमिहीन श्रमिकों, छोटे किसानों व बेराजगार ग्रामीण युवाओं के लिए पशुपालन एक अच्छा व्यवसाय है। पशुपालन में भारत का विश्व में प्रथम स्थान है। यहाँ के किसानों के लिए फसल उत्पादन के अतिरिक्त पशुपालन आय का प्रमुख स्रोत रहा है। खेती और पशुपालन एक-दूसरे के प्रति पूरक है। खेती से पशुओं के लिए चारा मिलता है और खेती के लिए खाद, पशुओं से हमें दूध और उस से बने घी, मक्खन, पनीर, दही आदि मिलते हैं। पशुपालन में दुधारू पशुओं जैसे; गाय, भैंस एवं बकरी को पाला जाता है। जिससे प्राप्त उत्पादों में दूध, मांस, ऊन, खाल इत्यादि की मांग दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। पशुओं से प्राप्त दूध, मांस तथा अंडों का मानव आहार में विशेष महत्व है। वैदिक काल से ही पशुपालन का ताना-बाना ग्रामीण समुदाय के साथ मजबूती से बुना हुआ है क्योंकि खेती तो सबके पास नहीं। भूमिहीन और गरीब किसानों के लिए छोटे पशु जैसे; भेड़, बकरियां, सूअर, एवं मुर्गी पालन रोजी-रोटी का मुख्य आधार है। इस कारण पशुपालन व्यवसाय में ग्रामीणों को रोजगार प्रदान करने तथा उनमें सामाजिक एवं आर्थिक स्तर ऊपर उठाने की अपार संभावनाएं उपलब्ध हैं। पशुधन मानव को भोजन और गैर-खाद्य पदार्थ प्रदान करते हैं। गैर खाद्य पदार्थ जैसे कि दूध, मांस, अंडे के अतिरिक्त पशुधन ऊन, बाल चमडा, हड्डी आदि के स्रोत हैं, जिनसे उत्पाद बनाए जाते हैं।

8. **दूध व्यवसाय से आत्मनिर्भरता:** खाद्य सुरक्षा की चुनौतियों का सामना करने हेतु दुग्ध व्यवसाय एक महत्वपूर्ण विकल्प है। भारत जैसे देश के लिए जहां कृषि और पशुपालन की आवश्यक दशा अनुकूल हैं, वही दुग्ध व्यवसाय को विश्वस्तरीय बनाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, एक बड़ी कार्यशील युवा जनसंख्या के लिए यह रोजगार का उत्तम विकल्प हो सकता है।

9. **मशरूम उत्पादन से आत्मनिर्भरता:** भारत में मशरुम उत्पादन नवीनतम व्यवसाय है। यह एक ऐसा व्यवसाय है, जिसमें अन्य नकदी फसलों की अपेक्षा शीघ्र एवं अधिक लाभ मिलता है। कृत्रिम रूप से बिना खेत-खलिहान के वर्ष भर मशरूम उत्पादन किया जा सकता है। मशरूम ऐसी कवक है, जो पूरे वर्ष कम भूमि एवं पूंजी में तैयार हो जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में गेहूं का भूसा, धान का पुआल, मक्का के सूखे पत्तों एवं दालों के छिलके, सोयाबीन, मटर, बाजरा तथा सरसों के अवशेषों का प्रयोग मशरूम उत्पादन के माध्यम के रूप में किया जा सकता है। मशरूम उत्पादन महिलाओं को घर बैठे-बैठे रोजगार प्रदान करने के साथ-साथ उनकी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने में सहायता कर सकता है। इसके अतिरिक्त कम समय, कम लागत तथा अधिक लाभ के कारण यह ग्रामीण युवकों एवं महिलाओं को रोजगार प्राप्त कराने का एक उत्तम साधन है।

10. **मुर्गी पालन से आत्मनिर्भरता:** मुर्गी पालन या कुक्कुट पालन या पोल्ट्री फार्मिंग कृषि से संबद्ध गतिविधियों में नहीं, बल्कि पूरी अर्थव्यवस्था में सबसे तेजी से

बढ़ता व्यवसाय है। भारत में तीव्रगति से बढ़ती जनसंख्या की खाद्य सुरक्षा, पोषण, आमदनी वृद्धि के लिए मुर्गी पालन व्यवसाय को अपना कर भविष्य बना सकते हैं क्योंकि वर्तमान में मांसाहारी वर्ग के साथ-साथ शाकाहारी वर्ग भी अंडों का उपयोग करने लगे हैं, जिससे मुर्गी पालन व्यवसाय के बढ़ने की संभावनाएं प्रबल होती जा रही हैं। कृषि से प्राप्त उप-उत्पादों को मुर्गियों को आहार के रूप में उपयोग करके तथा मुर्गियों का क्रय-विक्रय करके भी इस व्यवसाय में रोजगार प्राप्त किया जा सकता है। इस व्यवसाय का प्रारंभ भूमिहीन व बेरोजगार ग्रामीण बैंक से ऋण लेकर कम पूंजी में शुरु कर सकते हैं तथा अंडों के साथ-साथ प्रसंस्करण करके भी स्वरोजगार प्राप्त कर सकते हैं। मुर्गी पालन क्षेत्र लगभग 30 लाख लोगों को अप्रत्यक्ष अथवा प्रत्यक्ष रोजगार उपलब्ध कराने के अतिरिक्त बहुत से भूमिहीन तथा सीमांत किसानों के लिए सहयोगी आमदनी पैदा करने के साथ-साथ ग्रामीण गरीबों को पोषण सुरक्षा प्रदान करने का एक शक्तिशाली साधन है। भूमिहीन श्रमिक अपनी 50 प्रतिशत आमदनी पशुधन विशेषकर मुर्गी पालन से अर्जित करते हैं।

11. **मधुमक्खी पालन से आत्मनिर्भरता:** मधुमक्खी पालन एक ऐसा व्यवसाय है जिसमें स्थान, श्रम, पूंजी एवं समय की आवश्यकता कम होती है। यह व्यवसाय व्यक्ति अपने खाली समय का सदुपयोग कर अपने घर के आस-पास की खाली स्थान पर प्रारम्भ करके आय अर्जित कर सकता है। मधुमक्खी पालन प्रारम्भ करने का उत्तम समय बसंत तथा शीत ऋतु होता है। मधुमक्खी पालन खादी ग्राम उद्योग एवं लघु व्यवसाय है जिससे शहद एवं मोम प्राप्त होता है। यह ग्रामीण क्षेत्रों के विकास का एवं आय का स्रोत है। रोजमर्रा के जीवन में शहद के बढ़ते प्रचलन के चलते मुधमक्खी पालन भी किसानों की आमदनी में अहम भूमिका निभा रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वरोजगार की सघन संभावना वाले इस व्यवसाय के आर्थिक उत्पाद शहद, शाही जैली, मौम, पराग, मौन विष आदि हैं, जो बहुत मूल्यवान और औषधीय उत्पाद हैं।

12. **मत्स्य पालन से आत्मनिर्भरता:** भारतीय अर्थव्यवस्था में मछली पालन एक महत्वपूर्ण व्यवसाय है जिसमें रोजगार की अपार संभावनाएं हैं। मछली पालन के द्वारा रोजगार सृजन तथा आय में वृद्धि की भी संभावनाएं उपलब्ध हैं। मछली उत्पादन में तीव्र और सतत विकास, खाद्य एवं पोषण सुरक्षा व रोजगार और उत्तम आजीविका उपलब्ध कराने के लक्ष्य के साथ केंद्र सरकार इससे संबंधित सभी योजनाओं को उत्तम ढंग से क्रियान्वयन कर रही है।

13. **खाद्य प्रसंस्करण द्वारा रोजगार, आमदनी एवं आत्मनिर्भरता:** भारत में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग असंगठित क्षेत्र में श्रमिकों को सबसे अधिक रोजगार प्रदान करने वाले क्षेत्रों में से एक है। यह क्षेत्र रोजगार गहनता की दृष्टि से भी प्रमुख उद्योगों में सम्मिलित है, जो सभी पंजीकृत फैक्ट्री क्षेत्र में रोजगार सृजन में 11.69 प्रतिशत योगदान करता है। स्थानीय स्तर पर रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने के लिए खाद्य प्रसंस्करण तकनीकी पर जोर दिया जा रहा है। इससे किसान घरेलू स्तर पर उपलब्ध कृषि उत्पाद का मूल्य संवर्धन कर अधिक लाभ प्राप्त कर सकता है। कृषि प्रसंस्करण द्वारा जहां कृषि उत्पादों का मूल्यवर्धन होता है, वहीं ग्रामीण युवाओं को रोजगार भी मिलता है। यदि प्रत्येक गांव में कृषि उत्पाद के मूल्य संवर्धन के लिए एक केंद्र खोला जाए तो कम से कम 4 से 5 आदमियों को रोजगार मिल सकता है तथा मूल्य संवर्धन से किसानों की 15 से 20 प्रतिशत आय बढ़ सकती है। गांवों में सड़ने-गलने वाली चीजों जैसे; फल, सब्जी, मछली आदि संशोधित कर या उनके रूप को बदल कर उन्हें सुखाकर एवं पैक करके बेचा जाए तो इससे आमदनी वृद्धि होगी।

14. **आत्मनिर्भरता हेतु रोजगार सृजन के सरकारी प्रयास:** भारत सरकार रोजगार सृजन के लिए चार स्तरों पर काम कर रही है। पहला स्किल इंडिया, दूसरा मेक इन इंडिया, तीसरा स्टार्टअप और चौथा सीधे आजीविका, उद्यमिता व रोजगार का सृजन सम्मिलित हैं। इसमें स्किल इंडिया के अंतर्गत विभिन्न सरकारी योजनाओं और संगठनों के माध्यम द्वारा बड़े पैमाने पर कौशल विकास कार्यक्रम संचालित किया जा रहा है जिसका उद्देश्य युवाओं को कौशल प्रशिक्षण लेने, नियोजनीय बनने व अपनी आजीविका कमाने में समर्थ और

प्रेरित करना है। मेक इंडिया के अंतर्गत 25 उच्च अग्रता वाले क्षेत्रों में सरकार बड़े पैमाने पर अनुदान, कर रियायत, प्रोत्साहन आदि विभिन्न माध्यमों से वर्ष 2020 के अंत तक 10 करोड़ नए रोजगार पैदा करने जा रही हैं। स्टार्टअप इंडिया द्वारा नवसृजन और उद्यमिता का वातावरण तैयार कर रोजगार के नये अवसर प्रदान करना मुख्य कार्य है। स्टैंडअप इंडिया कार्यक्रम द्वारा अनुसूचित जाति, जनजातियों और महिलाओं में गैर-कृषि क्षेत्र में ग्रीनफील्ड उद्यमिता के माध्यम से रोजगार बढ़ाना है।

सारांश

भारत में कृषि प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से बहुत बड़ा रोजगार एवं आत्मनिर्भर भारतीय व्यवसाय है। आज आत्मनिर्भरता हेतु सही रूप में अपनाएं ताकि हम देश स्वयं बना सके और हमें बाहरी देशों पर निर्भर ना होना पड़े। कोरोना संकट से उत्पन्न हालात के बीच देश के करोड़ों लोगों की खाद्यान्न संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने और अर्थव्यवस्था की स्थिति को सुधारने में कृषि क्षेत्र की भूमिका काफी महत्वपूर्ण हो गई है। सरकार ने कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए आत्मनिर्भर भारत अभियान के तहत पहली बार कृषि सुधार के ऐतिहासिक फैसले किए हैं। आशा है कि आत्मनिर्भर भारत अभियान से भारत में उन्नत कृषि, ग्रामीण एवं कुटीर उद्योग, पशुपालन, डेयरी उत्पादन और खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों को नया प्रोत्साहन मिलेगा। ऐसे में मजबूत ग्रामीण अर्थव्यवस्था आत्मनिर्भर भारत की बुनियाद रख सकती है।

जब तक आपके पास राष्ट्रभाषा नहीं, आपका कोई राष्ट्र नहीं।

- मुंशी प्रेमचंद

भारतीय भाषाएं नदियां हैं और हिंदी महानदी। हिंदी देश के सबसे बड़े हिस्से में बोली जाती है। हमें इसे राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करनी ही चाहिए। मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि हिंदी बिना हमारा काम चल नहीं सकता।

- रबिन्द्रनाथ टैगौर

धान में लगने वाले प्रमुख रोग एवं उनका प्रबंधन

[1]अतुल कुमार, [2]बिष्णु माया, एवं [3]ज्ञान प्रकाश मिश्र,

[1]बीज विज्ञान एवं प्रोदौगिकी संभाग, [2]पौधा रोग विज्ञान संभाग, [3]आनुवंशिकी संभाग
भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012

हमारे देश की सबसे प्रमुख अनाजीय फसल धान है। धान की फसल पर अनेक तरह की समस्याएं आ सकती हैं, रोग आक्रमण कर सकते हैं तथा इन रोगों के रोगकारक जीव की प्रकृति में विभिन्नता होने के कारण इनकी रोकथाम के उपाय भी भिन्न-भिन्न होते हैं। अतएवः रोगों का निदान एवं उसके प्रबंधन के विषय में जानकारी अत्यावश्यक है। सबसे पहले हमें स्वस्थ बीज की बात करनी चाहिए क्योंकि अगर किसान भाइयों के पास स्वस्थ बीज उपलब्ध हो तो आधी समस्याएं स्वतः समाप्त हो जाती हैं। अगर आपके पास स्वस्थ बीज की उपलब्धता नहीं है तो आप बीजोपचार करके आधी से अधिक समस्याओं से निदान पा सकते हैं। हमारा देश कृषि प्रधान देश है, जिनमें छोटे किसानों की संख्या ज्यादा है। जिनके पास छोटे-छोटे खेत है और प्रायः खेती ही उनके जीवन-यापन का प्रमुख साधन है। आधुनिक समय मे खाधान्न की मांग बढ़ती जा रही है तथा आपूर्ति के संसाधन घटते जा रहे है। दिनोदिन हमारी उत्पादकता कम होती जा रही है। ऐसे में आज आवश्यकता इस बात की है कि हम प्रमुख धान्य फसलों के प्रबंधन पर ध्यान दें।

अब इस लेख से आपको कुछ प्रमुख रोगों की विस्तृत जानकारी से अवगत कराना चाहेंगे।

1.धान प्रध्वंस (ब्लास्ट)

प्रध्वंस रोग मैग्नोपोर्थे ओरायजी द्वारा धान में होता है। सामान्यतया बासमती एवं सुगन्धित धान की प्रजातियां प्रध्वंस रोग के प्रति उच्च संवेदनशील होती है।

लक्षण: रोग के विशेष लक्षण पत्तियों पर दिखाई देते हैं, परंतु पर्णच्छद, पुष्पगुच्छ, गाठों तथा दाने के छिलको पर भी इसका आक्रमण पाया जाता है। कवक का पत्तियों, गाठों एवं ग्रीवा पर अधिक संक्रमण होता है। पत्तियों पर भूरे रंग के आंख या नाव जैसे धब्बे बनते हैं जो बाद में राख जैसे स्लेटी रंग के हो जाते हैं। क्षतस्थल के बीच के भाग में धूसर रंग की पतली पट्टी दिखाई देती है। अनुकूल वातावरण में क्षतस्थल बढ़कर आपस में मिल जाते हैं, परिणामस्वरूप पत्तियां झुलस कर सूख जाती है।

गांठ प्रध्वंस संक्रमण में गांठ काली होकर टूट जाती हैं। पौधे की गांठों पर कवक के आक्रमण से भूरे धब्बे बनते है, जो गांठ को चारो ओर से घेर लेते हैं। ग्रीवा (गर्दन) ब्लास्ट में, पुष्पगुच्छ के आधार पर भूरे से लेकर काले रंग के क्षत बन जाते हैं जो मिलकर चारों ओर से घेर लेते हैं और पुष्पगुच्छ वहां से टूट कर गिर जाता है जिसके परिणामस्वरूप दानो की शतप्रतिशत हानि होती है। पुष्पगुच्छ के निचले डंठल में जब रोग का संक्रमण होता है, तब बालियों में दाने नही होते तथा पुष्प और ग्रीवा काले रंग की हो जाती है।

प्रबंधनः

- स्वस्थ पौधों से प्राप्त बीज का ही प्रयोग करें। नर्सरी को नमीयुक्त क्यारी में उगाना चाहिए और क्यारी छायादार क्षेत्र में नही होनी चाहिए।
- जुलाई के प्रथम पखवाड़े में रोपाई पूरी कर लें। देर से रोपाई करने पर ब्लास्ट रोग के लगने की संभावना बढ़ जाती है।
- ट्राइसायक्लेजोल (बीम 75 डब्ल्यू पी 2 ग्रा. रसायन/कि.ग्रा. बीज) उपचारित बीज बोएं। या 2 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से कार्बेन्डाजिम के साथ बीजोपचार।
- 1 ग्राम/लीटर पानी में ट्राइसायक्लेजोल (बीम या धानटीम 75 घुलनशील पाउडर) या 1 ग्राम/लीटर पानी में कार्बेन्डाजिम (बेविस्टिन या धानुस्टिन 50 घुलनशील पाउडर) फफूँदनाशी का छिडकाव।

- संतुलित उर्वरकों का प्रयोग करें। खेत में रोग के लक्षण दिखायी देने पर नाइट्रोजन उर्वरक का प्रयोग न करें
- फसल स्वच्छता, सिंचाई की नालियों को घास रहित करना, फसल चक्र आदि उपाय अपनाना।
- रोग रोधी किस्मों जैसे-पूसा बासमती 1637, आई आर 64, पंकज, जमुना, सरजू 52, आकाशी और पंत धान 10 आदि को उगाना चाहिए।
- पूसा सुगंध-5 (पूसा 2511) ब्लास्ट के प्रति मध्यम प्रतिरोधी है।

2 बकाने

यह रोग जिबरेला फ्यूजीकुरेई की अपूर्णावस्था फ्यूजेरियम मोनिलिफोरमे से होता है।

लक्षण: बकाने रोग के प्ररूपी लक्षणों में प्राथमिक पत्तियों का दुबर्ल हरिमाहीन तथा असमान्य रूप से लंबा होना है हालांकि इस रोग से संक्रमित सभी पौधे इस प्रकार के लक्षण नही दर्शाते हैं क्योंकि संक्रमित कुछ पौधों में क्राउन विगलन भी देखा गया है जिसके परिणामस्वरूप धान के पौधे छोटे (बौने) रह जाते हैं। फसल के परिपक्वता के समीप होने के समय संक्रमित पौधे, फसल के सामान्य स्तर से काफी ऊपर निकले हुए हल्के हरे रंग के ध्वज-पत्र युक्त लंबी दौजियां (टिलर्स) दर्शाते हैं। संक्रमित पौधों में दौजियों की संख्या प्रायः कम होती है और कुछ हफ्तों के भीतर ही नीचे से ऊपर की और एक के बाद दूसरी, सभी पत्तियां सूख जाती हैं। कभी-कभी संक्रमित पौधे परिपक्व होने तक जीवित रहते हैं किंतु उनकी बालियाँ खाली रह जाती है। संक्रमित पौधों के निचले भागों पर, सफेद या गुलाबी कवक जाल वृद्धि भी देखी जा सकती है।

प्रबंधन

- रोग रोधी किस्मों का चयन करना चाहिए ।
- रोग में कमी लाने के लिए साफ-सुथरे रोगमुक्त बीजों का प्रयोग करना चाहिए जिन्हें विश्वसनीय बीज-उत्पादकों या अन्य विश्वसनीय स्रोतों से खरीदा जाना चाहिए।
- बोए जाने वाले बीजों से भार में हलके एवं संक्रमित बीजों को अलग करने के लिए नमकीन पानी का प्रयोग किया जा सकता है। ताकि बीजजन्य निवेश द्रव्य को कम किया जा सके।
- गर्म जल से बीजोपचार प्रभावी है। इसके लिए पहले बीजों को 3 घंटे तक सामान्य जल में भिगो दें और तत्पश्चात बीजों में विद्यमान कवक को नष्ट करने के लिए उन्हें 50-57^0 सें तापमान पर गर्म जल से 15 मिनट तक भिगोकर उपचारित करें।
- कवकनाशीयों के साथ बीजोपचार की संस्तुति की जाती है। इसके लिए 0.2 प्रतिशत कार्बडेज़ीम के घोल में बीजों को 5 घंटे तक भिगो कर रखते हैं। इस प्रकार से बीजोपचार के बाद, बुआई के पहले इन बीजों को 24 घंटे तक सामान्य जल में भिगो कर रखें।
- रोपाई से पहले पौध को 0.1 प्रतिशत कार्बडेज़ीम के घोल में 12 घंटे तक उपचार भी प्रभावी पाया गया है।
- खेत को साफ-सुथरा रखें और कटाई के पश्चात धान के अवशेषों एवं खर पतवार को खेत में न रहने दें।
- बकाने रोग से ग्रस्त पौधों के देखते ही तुरंत खेत से निकाल कर नष्ट कर दें ताकि अन्य स्वस्थ पौधे संक्रमित न हो सकें।

3 जीवाणुज पत्ती अंगमारी (जीवाणुज पर्ण झुलसा)

यह रोग जैन्थोमोनास ओरायजी पीवी ओरायजी नामक जीवाणु द्वारा उत्पन्न होता है।

लक्षण: यह राग मुख्यतः दो अवस्थाओं में प्रकट होता है। पर्ण अंगमारी (पर्ण झुलसा) अवस्था और क्रेसेक अवस्था।

पर्ण अंगमारी (पर्ण झलुसा) अवस्था: पत्तियों के उपरी सिरो पर जलसिक्त क्षत बन जाते है। पीले या पुआल रंग के ये क्षत लहरदार होते है जो पत्तियों के एक या दोनों किनारों के सिरे से प्रारंभ होकर नीचे की ओर बढ़ते है और अंत में पत्तियां सूख जाती है। गहन संक्रमण की स्थिति में रोग पौधों के सभी अंगो जैसे पर्णाच्छद, तना और दौजी को सुखा देता है।

क्रेसेक अवस्था: यह संक्रमण पौधशाला अथवा पौध लगाने के तुरन्त बाद ही दिखाई पड़ता है। इसमें पत्तियां लिपटकर नीचे की ओर झुक जाती है। उनका रंग पीला या भूरा हो जाता है तथा दौजियां सूख जाती है। रोग की उग्र स्थिति में पौधे मर जाते हैं।

प्रबंधन

- संतुलित उर्वरकों का प्रयोग करें तथा खेत में ज्यादा समय तक जल न रहने दें तथा उसको निकालते रहें।
- उपचारित बीज का प्रयोग करें। इसके लिए स्ट्रैप्टोसाइक्लिन (2.5 ग्रा.) तथा कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (25 ग्राम)/10 लीटर पानी के घोल में बीज को 12 घंटे तक डुबोएं। या
- 10 लीटर पानी में 2.5 ग्राम स्ट्रेप्टोसायक्लिन तथा 2.5 ग्राम ब्लाइटॉक्स घोलकर बीजो को बुआई से पहले 12 घंटे के भिगो दें। या
- बीजो को स्थूडोमोनास फ्लोरेसेन्स 10 ग्राम/किलो ग्राम बीज की दर से उपचारित कर लगावें।
- धान रोपने के समय पौधें के बीच की दूरी 10-15 सेमी. अवश्य रखें।
- इस बीमारी के लगने की अवस्था में नाइट्रोजन का प्रयोग कम कर दें।
- जिस खेत में बीमारी लगी हो उसका पानी दूसरे खेत में न जाने दें। इससे बीमारी के फैलने की आशंका होती है। साथ ही उस खेत को भी पानी न दें।
- खेत में बीमारी को फैलने से रोकने के लिए खेत से समुचित जल निकास की व्यवस्था की जाए तो बीमारी को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है।
- रोग के लक्षण प्रकट होने पर 100 ग्राम स्ट्रेप्टोसायक्लिन और 500 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराईड का 500 लीटर जल में घोल बनाकर/है. की दर से छिड़काव करें। 10 से 12 दिन के अंतर पर आवश्यकतानुसार दूसरा एवं तीसरा छिड़काव करें।
- उन्नत पूसा बासमती 1 (पूसा 1460) अत्यंत रोग प्रतिरोधी किस्म है, रोग रोधी किस्मों जैसे- आई. आर.-20, मंसूरी, प्रसाद, रामकृष्णा, रत्ना, साकेत-4, राजश्री और सत्यम आदि का चयन करें।

4 आच्छद झुलसा गुतान झुलसा (शीथ ब्लाइट)

यह रोग राइजोक्टोनिया सोलेनी नामक कवक द्वारा उत्पन्न होता है।

लक्षण: पानी अथवा भूमि की सतह के पास पर्णच्छद पर रोग के प्रमुख लक्षण प्रकट होते है। इसके प्रकोप से पत्ती के शीथ (गुतान) पर 2-3 सें.मी. लंबे हरे से भूरे रंग के धब्बे बनतें हैं जो कि बाद में चलकर भूसे के रंग के हो जाते हैं। धब्बों के चारों तरफ बैंगनी रंग की पतली धारी बन जाती है। अनुकूल वातावरण में क्षतस्थलों पर कवक जाल स्पष्ट दिखते हैं, जिन पर अर्ध अथवा पूर्ण गोलाकार भूरे रंग के स्क्लेरोशिया बनते हैं। पत्तियों पर क्षतस्थल विभिन्न आकृति में होते है। ये क्षत धान के पौधों पर दौजियां बनते समय एवं पुष्पन अवस्था में बनते हैं।

प्रबंधन:

- सस्य क्रियाओं को उचित समय पर संपन्न करना तथा पिछली फसलों के अवशेषों को नष्ट करना।
- आवश्यकतानुसार नाइट्रोजन उर्वरकों का उपयोग करें और रोग प्रकट होने पर टॉप ड्रेसिंग को कुछ समय के लिए स्थगित करें।
- खेतों में घास कुल के खरपतवार एवं निकट जलकुंभी को नष्ट करना।
- 2 ग्रा. / कि.ग्रा. बीज की दर से कार्बेंडाजिम (बाविस्टीन) 50 डब्ल्यू पी का बीजोपचार उपयोगी है।
- 2.5 मिली/ली. पानी की दर से वैलिडामासिन (राइजोसिन या शीथमार), 2 ग्रा/ली. पानी की दर से या हैक्साकोनेजोल (कोंटाफ या सितारा 5 ई सी) का छिड़काव उपयोगी है।

5 आभासी कंड

यह रोग अस्टीलेजीनोइडिया वायरेंस नामक कवक द्वारा उत्पन्न होता है।

लक्षण: रोग के लक्षण बालियों के निकलने के बाद ही दृष्टिगोचर होते हैं। रोगग्रस्त बाली पहले संतरे रंग की, बाद में भूरे काले रंग की हो जाती है जो आकार में धान के सामान्य दाने से दोगुणा बड़ा होता है। ये दाने बीजायुक्त सतहों से घिरे होते हैं, जिनमें सबसे अंदर का सफेद पीला, बीच का केसरिया पीला तथा सबसे ऊपर भूरा काला होता है। अधिक संख्या में बीजाणु चूर्ण रूप में होते हैं जो हवा द्वारा वितरित होकर पुष्पों पर पहुंचते हैं और उन्हें संक्रमित करते हैं।

प्रबंधन:

- अत्याधिक रोग ग्रस्त बालियां सावधानी से निकालकर जलाएं।
- सस्य क्रियाओं को सावधानी पूर्वक संपन्न करें।
- ब्लाइटोक्स (कॉपर आक्सीक्लोराईड) 1.25 कि.ग्रा./है. का छिड़काव 50 प्रतिशत बालियां आने पर करें।
- रोग रोधी किस्में जैसे रत्ना, महसूरी उगाएं।

6 भूरी चित्ती (भूरे धब्बे)

यह रोग हेल्मिन्थोस्पोरियम ओराइजी नामक कवक से उत्पन्न होता है। पौधे के जीवन के सभी अवस्थाओं पर यह कवक संक्रमण करता है।

लक्षण: यह रोग देश के लगभग सभी हिस्सों मे फैली हुई हैं खासकर पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु इत्यादि। भारत मे इस रोग पर पहली बार रिर्पोट चैन्नई के सुन्दरारमण, द्वारा सन् 1919 बनाई गई थी। उत्तर बिहार का यह प्रमुख रोग है। यह एक बीजजनित रोग है। यह रोग हेल्मिन्थो स्पोरियम औराइजी द्वारा होता है। इस रोग मे धान की फसल को बिचड़ा से लेकर दानों तक को नुकसान पहुंचाता है। इस रोग के कारण पत्तियों पर गोलाकार भूरे रंग के धब्बें बन जाते है। यह रोग फफूंद जनित है। पौधों की बढ़वार कम होती है दाने भी प्रभावित हो जाते है जिससे उनकी अंकुरण क्षमता पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है। पत्तियों पर तिल के आकार के भूरे रंग के काले धब्बें बन जाते है। ये धब्बें आकार एवं माप मे बहुत छोटी बिंदी से लेकर गोल आकार का होता है। धब्बों के चारो ओर हल्की पीली आभा बनती है। पत्तियों पर ये पूरी तरह से बिखरे होते है। धब्बों के बीच का हिस्सा उजला या बैंगनी रंग की होती है। बड़े धब्बों के किनारे गहरे भूरे रंग के होते हैं बीच का भाग पीलापन लिए गेंदा सफेद या घूसर रंग का हो जाता है। उग्रावस्था में पौधों के नीचे से ऊपर पत्तियों के अधिकांश भाग धब्बों से भर जाते है। ये धब्बे आपस में मिलकर बड़े हो जाते हैं और पत्तियों को सुखा देते हैं। आवरण पर काले धब्बे बनते हैं। इस रोग का प्रकोप उपराऊ धान में कम उर्वरता वाले क्षेत्रों में मई से सितंबर माह के बीच अधिक होता है। यह रोग ज्यादातर उन क्षेत्रों में देखने को मिलता है, जहां किसान भाई खेतों में उचित प्रबंधन की व्यवस्था नहीं कर पाते हैं। इस रोग में दानों के छिलकों पर भूरे से काले धब्बें बनते है, जिससे चावल बदरंग हो जाता है। बाली में दानें सिकुड़े हुए बनते हैं। उग्र संक्रमण में बालियां बाहर नहीं निकल पाती।

प्रबंधन:

- संतुलित उर्वरकों का प्रयोग करें।
- कवकग्रसित पौधों के अवशेष एवं वैकल्पिक आश्रयदाता घासों को नष्ट करें।
- बीज जनित संक्रमण रोकने हेतु 2.5 ग्राम कवकनाशी (थीरम) /कि.ग्रा. से बीज उपचारित करें।
- बाद की अवस्था में डाईथेन एम 45 (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव उपयोगी है।

7 खैरा रोग

यह समस्या जस्ते की कमी के कारण होती है।

लक्षण: इसके लगने पर निचली पत्तियां पीली पड़नी शुरू हो जाती हैं और बाद में पत्तियों पर कत्थई रंग के छिटकवां धब्बे उभरने लगते हैं। रोग की तीव्र अवस्था में रोग ग्रसित पत्तियां सूखने लगती हैं। कल्ले कम निकलते हैं और पौधों की वृद्धि रुक जाती है।

प्रबंधन:

यह समस्या न हो इसके लिए 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट/है. की दर से रोपाई से पहले खेत की तैयारी के समय डालना चाहिए।

- लक्षण दिखने के बाद इसकी रोकथाम के लिए 5 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट तथा 2.5 कि.ग्रा. चूना 600-700 लीटर पानी में घोलकर एक हेक्टेयर में छिड़काव करें। अगर रोकथाम न हो तो 10 दिन बाद पुनः 5 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट तथा 2.5 कि.ग्रा. चूना 600-700 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

बीज उपचार - खुशहाली का आधार।
लागत कम - लाभ हजार।।

सही स्थान पर बोया गया सुकर्म का बीज ही महान फल देता है।

- कथा सरितसागर

बीज उत्पादन में रोजगार के अवसर

रणबीर सिंह एवं नीलामानि राठी

जैव पदार्थ उपयोग इकाई एवं सस्य विज्ञान संभाग
भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012

बीज ही खेती का मुख्य आधार है, क्योंकि अच्छे और खराब बीजों पर ही फसलों के उत्पादन की किस्म और मात्रा निर्भर करती है। बीज कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता की धुरी है। कृषि उत्पादकता को प्रभावित करने वाले अवयव यथेष्ठ बीज न होने से निष्प्रभावी रह जाते हैं। अच्छी फसल के लिए अच्छे बीज का अहम योगदान होता है।

चित्र 1: विभिन्न फसलों के बीज

कृषि उत्पादकता में बीज, खाद, उर्वरक, सिंचाई, कीटनाशी, कवकनाशी, मौसम परिवर्तन एवं फसल प्रबंधन का योगदान है। उत्पादन की दृष्टि से बीज का योगदान 20 से 25 प्रतिशत तक होता है। वर्तमान समय में रोजगार के कम अवसर होने के कारण बीज उत्पादन एवं बीज विक्रय को नवयुवकों ने अपनी जीवकापार्जन का साधन बनाया। अधिकांश बीज विक्रेता तथा बीज उत्पादक किसानों के मध्य अपनी शाख बनाए रखने हेतु उत्तम ही नहीं सर्वोत्तम गुणवता के बीज का व्यवसाय करते हैं, इस व्यवसाय में व्यक्ति को धैर्य का धनी होना चाहिए। अच्छे बीजों से फसलों की पैदावार में 25 से 35 प्रतिशत तक वृद्धि कर सकते हैं। अच्छे बीज क्षेत्र में उपलब्ध नहीं हो पाते हैं, परंतु उन्नतशील प्रजातियों के बीज विभिन्न संस्थाओं से क्रय करके क्षेत्र में विक्रय किया जा सकता है। कुछ शिक्षित युवक बीज विक्रय के रोजगार को अपना सकते हैं। इसके लिए जिला कृषि अधिकारी/बीज उत्पादक संस्थानों से संपर्क किया जा सकता है। सब्जी, फल व फूलों की फसलों के बीजों का उत्पादन करने में काफी अच्छी आय प्राप्त होती हैं। इसके अतिरिक्त खाद्यान्न फसलों, दलहनों व तिलहनों की फसलों के बीज का उत्पादन किया जा सकता है। कई निजी कंपनियां इस प्रकार के बीजोत्पादन कार्य कर रही हैं। इस कार्य में बीजों की गुणवत्ता अच्छी रखने के लिए विशेष सावधानियां रखनी पड़ती हैं। यह काफी लाभकारी व्यवसाय है। इस व्यवसाय में प्रगति की अच्छी संभावनाएं हैं। अतः कुछ किसान धान, गेहूं व दलहनी फसलों के बीज उत्पादन कर फसल उत्पादन की अपेक्षा आसानी से डेढ़ गुना तक शुद्ध लाभ ले रहे हैं।

किसानों को बीज उपजाने से पहले उससे जुड़ी खास बातों की जानकारी प्राप्त कर लेना आवश्यक है। किसानों को बीज की किस्म का चुनाव, बीज उत्पादन, बीज प्रसंस्करण, बीज भंड़ारण, बीज प्रमाणीकरण, बीज विपणन और प्रचार-प्रसार की जानकारी लेने के बाद ही बीज उत्पादन का कार्य चालू करना चाहिए। किसानों को यह समझना होगा कि जिन बीजों की खपत अधिक हो, उन्हीं का उत्पादन करना चाहिए। बीज लगाने के लिए खेत का समतल, उपजाऊ और नुकसान पहुंचाने वाले खरपतवार और कीटों से मुक्त होना चाहिए। इसके अतिरिक्त उर्वरक और सिंचाई का उत्तम प्रबंध भी आवश्यक है।

बीज के लिए फसल की कटाई में खास सावधानी भी महत्वपूर्ण होती है। फसल को पूरी तरह तैयार होने के बाद ही काटना चाहिए, क्योंकि अधिक नमी होने से बीज सूखने के दौरान सिकुड़ने लगते हैं। धान के बीजों में 15

से 18 प्रतिशत, गेहूं के बीजों में 15 से 17 प्रतिशत और मक्का के बीजों में 20 से 25 प्रतिशत नमी रहने पर कटाई कर लेने से उत्तम किस्म के बीज तैयार होते हैं। बीजों की छंटाई और ग्रेडिंग के ग्रेविटी सेपरेटर, स्पाइरल सेपरेटर, डिस्क सेपरेटर, प्रिसीजन ग्रेडर का प्रयोग किया जाता है। इन मशीनों से गुजर कर बीज शुद्ध, साफ और उन्नत बन जाते हैं। बीजों को बोरे या पैकेट में बंद करने से पहले कवक एवं कीटनाशकों से उनका उपचार कर लेना आवश्यक है। बीज उत्पादन के लिए आधार बीज की आवश्यकता होती है। यह राष्ट्रीय बीज निगम, राज्य बीज निगमों, कृषि विश्वविद्यालयों और कृषि विज्ञान केंद्रों से प्राप्त किया जा सकता है। बीज मिलने के बाद उत्पादक को राज्य बीज प्रमाणन एंजेसी में आवेदन करना होता है। पंजीकरण के लिए सभी फसलों के लिए प्रति मौसम 50 रूपये और निरीक्षण शुल्क 200 से 300 रू / हेक्टेयर लगता है। बीज उत्पादन व्यवसाय को निम्न प्रकार से किया जा सकता हैः

1. प्रजनक खरीदकर, उससे वैज्ञानिक विधि से विशेष सावधानियां रखकर अच्छी गुणवत्ता वाले बीज बनाकर बाजार में बेचा जाता है।
2. कई निजी कंपनियां हैं जो किसान को अपनी तरफ से ब्रीडर बीज या आधार बीज देती हैं और उससे तैयार बीज को वही कम्पनी स्वयं खरीद लेती है। बाजार में मांग को ध्यान में रखकर ही बीज व्यवसाय शुरू करना चाहिए। जिस बीज की बाजार में मांग हो, उसी फसल के बीज तैयार करने चाहिएं। ग्रीन हाउस तकनीकी द्वारा बीजोत्पादन अच्छे ढंग से किया जा सकता है।

बीज उत्पादनः खेतों को नई तकनीकियों के अंतर्गत बीज उत्पादन व्यापारिक फसल उत्पादन से इस दृष्टि से भिन्न होता है कि बीज उत्पादन के अंतर्गत बीज की शुद्धता बनाए रखने के लिए सावधानी रखी जाती है। किसी मान्यता प्राप्त बीज उत्पादन संस्थान से आधार बीज प्राप्त कर उनका गुणन किया जाता है एवं बीज की फसल को संदूषण के स्रोत एवं कारकों से दूर रखा जाता है। फिर इन्हें पादक प्रजनन के जाने-माने तरीकों को अपना कर विकसित किया जाता है। ताकि विशिष्ट आनुवंशिक गुण एवं शुद्धता कायम रखी जा सके। इसके लिए बीज गुणन प्रक्षेत्रों का निरंतर निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण किया जाता है। इसके साथ-साथ बीज प्रमाणीकरण संस्था का प्रमाण पत्र लेना आवश्यक होता है। बीज उत्पादन में चार प्रकार के बीजों का प्रयोग होता है-

1. **प्रजनक बीजः** यह वह बीज है जो पादप प्रजनन या जिस संस्था द्वारा विकसित किया गया हो उससे सीधे संबंधित होता है। यही प्रारंभिक बीज उत्पादन का आधार है और इसी से भविष्य में बीज उत्पादन बढ़ाया जाता है। इसमें सबसे अधिक आनुवंशिक शुद्धता होती है।
2. **आधार बीजः** इसका उत्पादन प्रजनक बीज से किया जाता है। इसका उत्पादन इस प्रकार से किया जाता है कि विशेष मानकों के अनुसार इस बीज में आनुवंशिक गुण और शुद्धता बनी रहती है। यह बीज कृषि अनुसंधान प्रक्षेत्रों या राष्ट्रीय बीज निगम द्वारा क्षेत्रों में आधार बीज के रूप् में बढ़ाया जाता है। इसका उत्पादन अनुसंधान पदाधिकारी की देख-रेख में होता है।
3. **प्रमाणित बीजः** यह आधार बीज से प्रामाणिक संस्था की देख-रेख में उत्पादित किया जाता है। इस बीज का उपयोग किसान आमतौर पर व्यवसायिक उत्पादन हेतु करते हैं। इसको भी बीज शुद्धता से गुजरना पड़ता है। यही वह बीज है जो बीज संसाधन के बाद किसानों में वितरण किया जाता है।
4. **सत्यापित बीजः** ऐसा प्रमाणित बीज जो प्रमाणीकरण संस्था द्वारा पत्र नहीं मिलने पर, लेकिन अंकुरण शक्ति 80 से 85 प्रतिशत से ऊपर होने पर, प्रयोग में लाया जाता है। इसमें भी आनुवंशिक गुण एवं शुद्धता बनी रहती है, परंतु निबंधित नहीं होने के कारण प्रमाणीकरण प्रमाण पत्र नहीं प्राप्त होता है।

बीज उत्पादन के सिद्धांत

बीज का स्रोतः किसी भी फसल के सफल बीज उत्पादन के लिए अच्छी गुणवता वाले बीज का सबसे अहम भूमिका है। अतः बीज उत्पादन के दौरान आनुवंशिक शुद्धता बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि बीज

उपयुक्त स्रोत से ही खरीदा जाए, जिससे शुद्धता के साथ-साथ उसकी वंशावली व श्रेणी की भी पूर्ण जानकारी रहें।

खेत का चुनावः खेत की स्थिति बीज फसल की पृथक्करण आवश्यकतानुसार हो और खेत में पिछले वर्ष वही फसल न उगाई गई हो। यदि खेत में वही फसल बोना आवश्यक हो तो उसी प्रजाति का चयन करें जो पिछले वर्ष उगाई गई थी। खेत खरपतवारों से मुक्त होना चाहिए। खेत की मिट्टी की किस्म व उर्वरता के लिए खेत का समतल होना आवश्यक है। खेत की जलधारण क्षमता अच्छी होनी चाहिए तथा अधिक जल भराव की स्थिति में जल निकास की उचित व्यवस्था भी होनी चाहिए।

संदूषण स्रोतों से पृथक्करण दूरी

उत्तम बीज उत्पादन हेतु खेत को विभिन्न संक्रमणों से बचाव हेतु निश्चित निम्नतम पृथक्करण पर रखने को ही पृथक्करण दूरी कहा जाता है। बीज फसल को पर-परागण द्वारा होने वाले संदूषण, कटाई व गहराई के समय अन्य बीजों के मिश्रण या रोगों के फैलाव की रोकथाम के लिए निश्चित दूरी पर उगाया जाता है, जो बीज फसल की परागण विधि व बीज श्रेणी के आधार पर रखा जाता है। उदाहरणार्थ स्व-परागित फसलों में 3 से 10 मी. आंशिक पर-परागित फसलों में 30 से 100 मी. तथा पर-परागित फसलों में ही 200 से 1600 मी. पृथक्करण दूरी रखी जाती है। संकर बीज उत्पादन की पैतृक लाइन के आधार बीज उत्पादन में 200 मीटर व संकर बीज उत्पादन में 100 मीटर की पृथक्करण दूरी आवश्यक होती है। जब बीज फसल को भिन्न किस्म के खेतों से अपेक्षित दूरी पर उगाना संभव नहीं होता तो बीज फसल को अगेती या पछेती फसल के रूप में भी उगाया जाता है, जिससे बीज फसल व निकटस्थ भिन्न किस्म में पुष्पन अलग-अलग समय पर हो।

अवांछित पौधों का निष्कासन (रोगिंग)

बीज फसल से अवांछित पौधो को निकालना रोगिंग कहलाता है। बीज उत्पादन में प्रजातिय शुद्धता बनाए रखने हेतु यह कार्य महत्वपूर्ण है। ऐसे पौधे जो प्रजातिय गुणों में समान न हो को भिन्न (ऑफ टाइप) पौधा कहते हैं। समय-समय पर अन्य किस्मों के पौधों, खरपतवारों व रोगी पौधों को निकालते रहना चाहिए, जिससे पर-परागण व रोगों के प्रसार से बीज क्षति न होने पाए। बीमारी से ग्रसित पौधों को जड़ सहित उखाड़कर थैलों या लिफाफों में बंद करके खेत से बाहर ले जाकर मिट्टी में दबा देना चाहिए जिससे व संदूषण न फैलाएं।

बीज फसल की कटाई व संसाधन

बीज फसल की कटाई व थ्रेसिंग बहुत सावधानी से करनी चाहिए जिससे बीज को किसी प्रकार की क्षति न पहुंचे व बीज में उच्च स्तर की अंकुरण क्षमता बनी रहे। फसल की कटाई बीज में उचित नमी स्तर होने पर ही करे। फसल कटाई, गहाई, संसाधन, बीज उपचार, थैलाबन्दी के समय उचित सावधानियां अपना कर यांत्रिक अपमिश्रण से बचाव किया जाता है, अन्यथा बीज उत्पादन हेतु किए गए सभी उपाय व्यर्थ हो जाएगे।

बीज उत्पादन प्रबंधनः बीज उत्पादन रख-रखाव एवं प्रबंधन की दृष्टि से व्यावसायिक फसल उत्पादन से भिन्न होता है। गुणवतायुक्त बीज के लक्षण निम्नलिखित हैं:

1. आनुवंशिक शुद्धता किस्म के अनुरूप, आकार, रंग एवं माप।
2. अंकुरण क्षमता और ओजः बीज के उच्च अंकुरण क्षमता एवं ओज होना चाहिए।
3. भौतिक शुद्धता अन्य फसलों के बीज, फसल अवशेष, छोटे और टूटे बीज तथा रोगग्रसित बीज रहित होना चाहिए।
4. बीज नमीः 8 से 10 प्रतिशत।
5. बीज स्वास्थ्यः निरोगी।

कृषि उत्पादकता बढ़ाने में बीज का महत्व सबसे अधिक होता है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थानों ने बीज केंद्र बनाए हैं ताकि कृषित फसलों के बीजों की उपलब्धता में वृद्धि हो। इसके अतिरिक्त 2018-19 में भी 25 अतिरिक्त बीज केंद्र खोले गए हैं ताकि उच्च पौष्टिकता वाली फसलों के उच्च गुणवता के बीज उपलब्ध कराए जा सकें।

कृषि कार्यों के मध्य कोरोना विषाणु (कोविड-19) से बचाव

[1]दिनेश कुमार, [2]इंद्रमणि एवं [3]अनुपमा सिंह

[1]सस्य विज्ञान संभाग, [2]कृषि अभियांत्रिकी संभाग, [3]कृषि रसायन संभाग
भा.कृ.अनु.प.- भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली 110012

किसान भाई-बहन वर्षभर अपनी खेती एवं बागवानी में अनेक प्रकार के कृषि-कार्यों में संलग्न रहते हैं। परंतु वर्तमान काल में कोरोना वायरस (कोविड-19) बीमारी का संक्रमण एक गंभीर समस्या के रूप में उभरा है जिसने इन कृषि कार्यों के निस्तारण को काफी प्रभावित किया है। जैसा कि हम जानते हैं कि खेती एवं बागवानी के अधिकतर कार्य किसानों एवं श्रमिकों (मजदूरों) द्वारा मशीनों एवं जानवरों (बैल/ भैंसा/ ऊँट/ घोड़ा, आदि) की मदद से संपन्न किए जाते हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि हम खेती-बाड़ी और बागवानी संबंधित कार्य तो अवश्य संपन्न करें, परंतु अपने आपको और साथी श्रमिकों को कोरोना वायरस के संक्रमण से बचाते हुए करें। कृषि कार्यों के दौरान कोरोना वायरस के संक्रमण से बचाव के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाए जाने चाहिए:

- कृषि कार्य करते समय अपने साथी किसानों एवं श्रमिकों के बीच कम से कम दो मीटर की दूरी बनाए रखें जिससे कि बीमारी फैलाने वाले विषाणु के कण एक से दूसरे व्यक्ति में न फैलें।
- घर से निकलने के उपरांत अपने चेहरे पर मास्क ज़रूर लगाएं एवं कृषि के विभिन्न कार्य निष्पादित करते समय भी इसे लगातार लगाए रखें। ये मास्क आपको कोविड-19 बीमारी के विषाणु के प्रवेश के अतिरिक्त मुंह में धूल एवं भूसे के प्रवेश को भी रोकेगा। साथ ही अपने संपूर्ण शरीर को कपड़ों से ढक्कर रखें और पूरी बाजू की कमीज/ कुर्ता पहने।
- यदि मजदूर, किसान अथवा किसान परिवार के किसी सदस्य में जुकाम, सिरदर्द, खांसी एवं बुखार के लक्षण प्रतीत हों तो उनको काम पर न लगाएं और इस प्रकार के व्यक्तियों को नजदीकी अस्पताल में परामर्श एवं इलाज के लिए भेजें।
- अपने खेत अथवा कृषि कार्यों की जगह पर पानी एवं साबुन की व्यवस्था अवश्य रखें जिससे कि आप अपने हाथ आसानी से बार-बार धोते रहें। हाथों को साबुन से अच्छी प्रकार धोने से इस बीमारी के विषाणु धुल जाते हैं अथवा नष्ट हो जाते हैं। साबुन एवं पानी के स्थान पर हैंड सेनिटाईज़र (हाथों पर लगाने वाला प्रक्षालक या रसायन) का भी प्रयोग किया जा सकता है। प्रत्येक 1.5 से 2 घंटे के अंतराल पर अपने हाथ धोते रहें।
- श्रमिक अथवा किसान खेत पर अलग-अलग पात्रों में भोजन ग्रहण करें। दो या इससे अधिक व्यक्ति एक ही बर्तन में खाना न खाएं। भोजन ग्रहण करने के दौरान भी कम से कम एक-दूसरे से दो मीटर की दूरी पर बैठें।
- कृषि-कार्यों के दौरान पीने के पानी की भी उचित व्यवस्था करें। कौशिश करें कि प्रत्येक श्रमिक अथवा कृषक-परिवार के सदस्य के पानी पीने के बर्तन/पात्र अलग-अलग हों। एक बर्तन से एक ही व्यक्ति पानी पिए। यदि नितांत आवश्यक हो तो डिटर्जेंट (कपड़े धोने वाला पाउडर) अथवा साबुन से धुलाई करने के बाद ही इन्हें साझा किया जा सकता है।
- अगर कोई अंजान व्यक्ति आपके खेत पर आता है तो उससे उचित दूरी बनाए रखें।
- अपने वस्त्रों का दिन में उपयोग करने के बाद शाम को दूसरे वस्त्रों का उपयोग करें। इन उतारे हुए वस्त्रों का उपयोग अगले दिन धुलाई करने के बाद ही किया जाना चाहिए। साथ ही धुलाई के बाद इन वस्त्रों को धूप में अच्छी प्रकार सुखालें और इसके बाद ही इन्हें प्रयोग में लाएं।

- जो किसान भाई अपनी गन्ने की फसल को गन्ना मिल के विक्रय केंद्र, अनाज फसलों के उत्पाद को गल्ला मंडी अथवा सब्जी/फलों को मंडियों में बिक्री के लिए ले जा रहे हैं उनको भी विशेष सावधानी बरतनी चाहिए। सबसे पहले अपने चेहरे पर मास्क लगा लें, हाथ साफ़ करने के लिए साबुन अथवा हैंड सेनिटाईज़र (हाथों पर लगाने वाला प्रक्षालक या रसायन) अपने साथ रखें एवं आवश्यकतानुसार इनका प्रयोग भी करें। साथ ही अपने साथ पीने का पानी भी ज़रूर रखें। मंडी में पहुंचने के उपरांत मिलने वाले सभी व्यक्तियों से उचित दूरी (कम से कम 2 मीटर) बनाए रखें।
- यदि आप अपने खेत से सब्जियां, फल या अन्य प्रक्षेत्र सामग्री विक्रय हेतु किसी किराए के वाहन (ट्रक, मैटाडोर, टैम्पो, आदि) से ले जा रहे हैं तब घर का केवल एक ही व्यक्ति इस वाहन के साथ जाए तो बेहतर होगा और ऊपर बताई गई सावधानियों का भी ध्यान रखना नितांत आवश्यक है।
- किसान भाइयों/बहनों को खेती संबंधी आदान (उर्वरक, बीज, रसायन, कीटनाशक आदि) खरीदते समय अथवा अपने कृषि-उत्पाद बेचते समय रूपयों एवं पैसों का भी आदान-प्रदान करना पड़ता है। रूपयों एवं पैसों के इस आदान-प्रदान के मध्य समय-समय पर अपने हाथों को हैंड सेनिटाईज़र से उपचारित करते रहें - कम से कम एक बार पैसे देने से पूर्व और एक बार पैसे प्राप्त करने के बाद। यदि आप बैंक में जाते हैं और चेक द्वारा धन निकालते हैं अथवा जमा करते हैं तब भी अपने हाथों को सेनिटाईज़र से बार-बार उपचारित करना न भूलें। साथ ही घर से निकलते समय मास्क लगाना न भूलें।
- यदि मशीनों अथवा उपकरणों (खुरपी/ दंराती/ फावड़ा/कस्सी, आदि) की अदला-बदली की आवश्यकता हो तो वापस लेते या देते समय इन्हें उपयुक्त रसायन या विधि से डिसइंफैक्ट कर लेना चाहिए। साथ ही समय-समय पर अपने हाथों को सेनिटाईज़र से भी शोधित करते रहें।
- इसी प्रकार यदि कस्टम हायरिंग केंद्र से आप कोई मशीन किराए पर ले रहे हैं तो इसकी सर्वप्रथम सफाई एवं धुलाई, और तदुपरांत उपयुक्त डिसइंफैक्टेंट रसायन से मशीन का शोधन/उपचार अवश्य करें।
- ट्रैक्टर की सीट, स्टेयरिंग, ब्रेक, क्लच आदि को नियमित रूप से उपयुक्त डिसइंफैक्टेंट रसायन द्वारा डिसइंफैक्ट करते रहें।
- कटाई एवं गहाई में प्रयुक्त मशीनों एवं उपकरणों (दंराती, हंसिया, फावड़ा, खुरपी, थ्रैशर , ट्रैक्टर, कंबाइन) की साफ़-सफाई का विशेष ध्यान रखें। और यदि उनकों विभिन्न कार्य-कर्ताओं ने छुआ है तो इनकी सतहों का उपयुक्त डिसइंफैक्टेंट से डिसइंफैक्शन अवश्य करें।
- ब्लीचिंग लिक्विड (विरंजक तरल जो सोडियम हाइपोक्लोराइट नामक रसायन होता है) अथवा ब्लीचिंग पाउडर (विरंजक चूर्ण जो कैल्शियम हाइपोक्लोराइट नामक रसायन होता है) कृषि मशीनों एवं उपकरणों के डिसइंफैक्शन के लिए उपयुक्त डिसइंफैक्टेंट हैं। ब्लीचिंग पाउडर का रंग सफेद होता है जो कि पानी में घुलनशील होता है और इसमें से क्लोरीन गैस की गंध आती रहती है।
- व्यावसायिक ब्लीचिंग लिक्विड बाज़ार में आसानी से मिल जाता है जिसकी सांद्रता लगभग 5-8% होती है। किसी छायादार एवं हवादार स्थान पर प्लास्टिक की बाल्टी या टब में ब्लीचिंग लिक्विड का घोल बनाया जा सकता है जिसके लिए 10 लीटर पानी में 2.25 कप ब्लीचिंग लिक्विड डालकर किसी लकड़ी से अच्छी प्रकार मिलाकर इसका प्रयोग करें। इस घोल को तैयार करने में साफ़ पानी का ही प्रयोग करें। तैयार घोल को प्लास्टिक की बोतलों में भरें और इन बोतलों को कपड़े से लपेटकर किसी ठंडे स्थान पर रखें। जहां तक संभव हो इस घोल को बनाने के बाद अतिशीघ्र प्रयोग में लाएं। प्रयोग के लिए सूती कपड़े के पौंछे पर तैयार घोल की थोड़ी मात्रा डालें

जिससे कि यह गीला हो जाए। अब इस गीले पौंछे से मशीन एवं अन्य फार्म उपकरणों की सतहों पर इसे रगड़ें और कुछ समय के लिए ऐसे ही छोड़ दें।

कोविड-19 के खिलाफ सुरक्षा के लिए कृषि मशीनों और कार्यस्थल की नियमित सफाई और डिसइंफैक्शन के लिए दिशानिर्देश

सामान्य दिशा - निर्देश

- किसानों को भारत सरकार के स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय अथवा भारत सरकार के अन्य विभागों द्वारा अनुशंसित निर्देशों का पालन करना चाहिए कि क्या करें और क्या न करें।
- कृषि-कार्यों के दौरान दस्ताने और मास्क जैसे उचित सुरक्षा उपायों का पालन करना अति आवश्यक है।
- कृषि-कार्यों के मध्य प्रत्येक किसान पीने के पानी की बोतलें अलग - अलग थैलों में रखें और किसी अन्य व्यक्ति के साथ साझा न करें।
- ट्रैक्टर पर कम से कम लोगों को बैठाया जाना चाहिए तथा उनके बीच बैठने की अधिकतम संभव दूरी हो।
- किसानों को नियमित रूप से साबुन या डिटर्जेंट से हाथ धोना चाहिए और काम के दौरान आंख, नाक और मुंह को बार-बार छूने से बचना चाहिए।
- किसानों को सार्वजनिक स्थलों पर नहीं थूकना चाहिए।

विशिष्ट दिशा निर्देश

किसान भाई नीचे दी गयी दोहरी चरण प्रक्रिया का पालन करें और कृषि मशीनों के चालन के समय स्पर्श की गई सतहों की नियमित सफाई करें, जैसे दंराती, ट्रैक्टर और कंबाइन हार्वेस्टर के नियंत्रण बिंदु जैसे स्टीयरिंग, थ्रोटल लीवर, गियर शिफ्टिंग लीवर, सीट और मिरर, थ्रैशर के मुहाने, मशीन हिच पॉइंट, स्प्रेयर आदि।

चरण 1: मशीनरी की सफाई के लिए डिटर्जेंट पानी और सोडियम हाइपोक्लोराइट (1%) प्रयोग संबंधी सुझाव

1. पानी में डिटर्जेंट डालकर एक घोल तैयार करें और किसी भी उपलब्ध पोर्टेबल नैपसैक या हैंडहेल्ड बैटरी चलित स्प्रेयर से मशीनों की सतहों पर छिड़कें।
2. बड़ी जगहों जैसे मशीनरी शेड के लिए उच्च क्षमता वाले ऐरोब्लास्ट स्प्रेयर या ऑर्चर्ड स्प्रेयर का उपयोग करें।
3. धातु और मशीनों की सतहों को स्प्रेयर का प्रयोग करके पहले उन्हें साफ पानी से धोएं और10-15 मिनट तक सूखने का इंतजार करें।
4. अनुशंसित मात्रा में सोडियम हाइपोक्लोराइट (1%)या ब्लीच के घोल को पानी से साफ़ की गयी धातु और मशीनों की सतहों पर छिड़कें।

विशेष सावधानी: छिड़काव के दौरान ट्रैक्टर/कंबाइन हार्वेस्टर के इलेक्ट्रॉनिक्स उपकरणों और नियंत्रण पटल कोपॉलिथीन से ढक देना चाहिए।

चरण 2: बार- बार स्पर्शकी आवश्यकता पड़ने वाली कृषि मशीनों की सतहों को डिसइंफैक्ट करना

बार-बार छुए जाने वाली सतहों जैसे कि स्ट्रींग व्हील, थ्रोटल लीवर, गियर शिफ्टिंग लीवर, सीट और मिरर, थ्रैशर के मुहाने आदि को एल्कोहल/स्प्रिट से पोंछें।

अंत में यह आशा की जाती है कि किसान भाई उपर्युक्त में बताए गए सुरक्षा के उपायों को अपनाएंगे और अपने कृषि कार्यों को सही समय पर निष्पादित कर सकेंगे जिससे खेती में कोविड-19 महामारी का न्यूनतम प्रभाव कृषि पर पड़े।

खाद्य वनस्पति तेलों से प्राकृतिक विटामिन-ई निष्कर्षण के लिए कुशल कार्यप्रणाली

विनुथा टी, नविता बंसल एवं शैली प्रवीण

जैव रसायन विभाग

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान पुसा, नई दिल्ली-110012

एंटीऑक्सिडेंट, फ्री रेडिकलस (प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजातियों) से उत्पन्न ऑक्सीडेटिव क्षति को रोकने में एक प्रमुख भूमिका निभाते हैं जो कि कैंसर, हृदय रोगों, स्मृति हानि, आंखों के रोगों और उम्र बढ़ने सहित कई बीमारियों का आधार है। हमारे पास बहुत सारे प्राकृतिक और सिंथेटिक एंटीऑक्सिडेंट्स विकल्प उपलब्ध हैं लेकिन इन सबमे विटामिन - ई (विट-ई) एक प्रमुख प्राकृतिक एंटीऑक्सिडेंट है जो फ्री रेडिकलस से अभिक्रिया करके ऑक्सीडेटिव क्षति को रोकता है और इसलिए हमारे शरीर पर उनके हानिकारक प्रभाव को सीमित या विलंबित करता है। विटामिन ई (विट-ई) एक प्रभावशाली, वसा में घुलनशील एंटीऑक्सीडेंट है, जो फ्री रेडिकल से होने वाले नुकसान के खिलाफ कोशिका झिल्ली की रक्षा करता है। यह आहार पूरक के रूप में बेचे जाने वाले पहले दो एंटीऑक्सिडेंट यौगिकों में से एक है, दूसरा विटामिन सी है। एंटीऑक्सीडेंट भूमिका के अलावा, विट-ई में कई अन्य जैविक गतिविधियां हैं जिनमें एंटी-इन्फ्लेमेटरी, एंटी-मोटापा, एंटी-हाइपरग्लाइसेमिक, एंटी-हाइपरटेंसिव और एंटी-हाइपरकोलेस्टेरोलेमिक शामिल हैं। एक वयस्क के लिए विट-ई की दैनिक आवश्यकता 15 मिलीग्राम है और इसे प्राकृतिक रूप से नट्स (बादाम, मूंगफली और हेज़लनट्स) और खाद्य तेलों से प्राप्त किया जा सकता है, जिनमें मुख्य रूप से सोयाबीन, सूरजमुखी का तेल या विट-ई फोर्टीफाइड आहार हैं। । प्राकृतिक विटामिन ई एक एकल आइसोमर है, जो मुख्य रूप से वनस्पति तेलों, नट्स, पत्तेदार सब्जियों, फलों आदि जैसे खाद्य स्रोतों से निकाला जाता है। प्रकृति में पाया जाने वाला विटामिन ई अल्फा-टोकोफ़ेरॉल के रूप में मौजूद है। प्राकृतिक विटामिन ई रासायनिक रूप से अद्वितीय और जैविक रूप से प्रभावी है। सिंथेटिक विटामिन ई आम तौर पर खाद्य स्रोतों से प्राप्त नहीं किया जाता है और ट्राइमेथिलहाइड्रकिनोन के साथ आइसोफाइटपोल की प्रतिक्रिया से पेट्रोकेमिकल्स से तैयार किया जाता है। सिंथेटिक विटामिन ई शरीर में स्वास्थ्य लाभ प्रदान करने में कम प्रभावी होते हैं। यह प्राकृतिक विटामिन की तुलना में शरीर द्वारा आसानी से उपयोग नहीं किया जाता है, इसलिए विटामिन ई के अवशोषण और उपयोग में इसकी कमी होती है।

प्राकृतिक विटामिन ई की जैव-उपलब्धता सिंथेटिक विटामिन की तुलना में लगभग 2:1 है। मानव शरीर दृढ़ता से प्राकृतिक और सिंथेटिक विटामिन रूप के बीच भेदभाव करता है, दोनों ही रूपों को शरीर में अवशोषित किया जाता है लेकिन अवशोषण के बाद, एक विशिष्ट प्रोटीन (अल्फा-टीटीपी) केवल विटामिन ई के प्राकृतिक रूप को पहचानता है। अध्ययनों से पता चलता है कि सिंथेटिक विटामिन ई की अवधारण कम है, इसलिए किसी व्यक्ति या जानवर को प्राकृतिक रूप की जैवउपलब्धता से मेल खाने के लिए सिंथेटिक विटामिन ई की दोगुना मात्रा लेना पड़ता है।

2016 में वैश्विक प्राकृतिक विटामिन-ई (विट-ई) बाजार का मूल्य 820.18 मिलियन अमरीकी डालर था, 2018-23 के दौरान 5.2% की अपेक्षित सीएजीआर (मिश्रित वार्षिक वृद्धि दर) के साथ। वाणिज्य मंत्रालय के 2014 के आंकड़ों के अनुसार, भारत ने चीन, अमेरिका और जर्मनी से 12.69 मिलियन अमरीकी डालर का विटामिन-ई मूल्य 29 से 96 मिलियन अमरीकी डालर प्रति किलोग्राम की दर से आयात किया और जिसका उपयोग दवाओं, भोजन, पेय पदार्थों और सौंदर्य प्रसाधन में भी किया गया ।

प्राकृतिक विटामिन-ई की भारी मांग सिंथेटिक विटामिन-ई की <50% कम जैविक गतिविधि के कारण

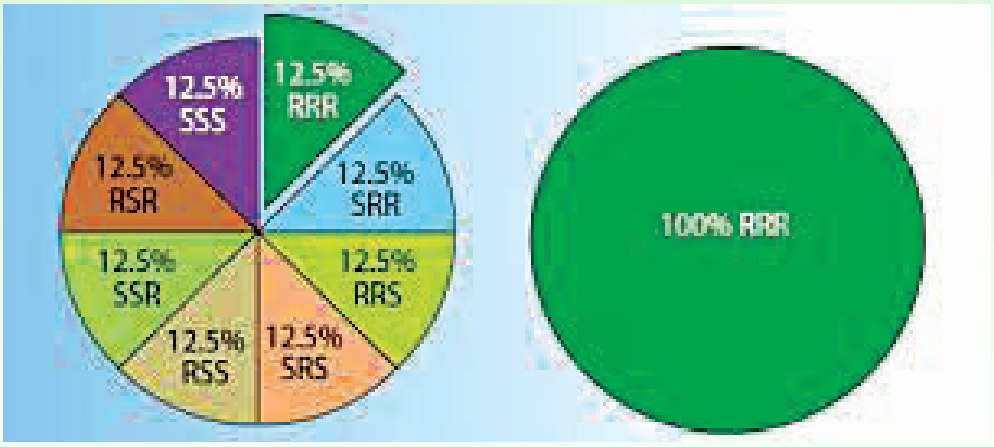

सिंथेटिक विटामिन ई प्राकृतिक विटामिन ई

है। इसलिए प्राकृतिक विटामिन-ई का अधिक उत्पादन करना महत्वपूर्ण है। भारत में विट-ई का घरेलू उत्पादन कई कारणों से गति नहीं ले रहा है, जैसे उच्च उत्पादन लागत के लिए कुशल प्रोटोकॉल की अनुपलब्धता । विट-ई के निष्कर्षण के कई तरीके पौधे की प्रजातियों और ऊतकों के प्रकार के आधार पर उपलब्ध हैं। हालांकि सैंपल तैयार करने के दौरान, विट-ई के स्थिरीकरण के लिए आवश्यक बिंदुओं पर विचार करना महत्वपूर्ण है, क्योंकि विट-ई प्रकाश के प्रति अत्यधिक संवेदनशील है और फोटो-ऑक्सीकरण द्वारा खराब हो जाता है। हमने सोया उत्पादों से प्राकृतिक विट-ई के कुशल और लागत प्रभावी निष्कर्षण के लिए लैब स्केल प्रत्यक्ष विलायक निष्कर्षण विधि विकसित की है। इस प्रोटोकॉल को औद्योगिक स्तर पर अप-स्केलिंग की आवश्यकता है। हमारी प्रयोगशाला में इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, प्राकृतिक स्रोतों से विटामिन-ई के निष्कर्षण का एक आर्थिक रूप से व्यवहार्य तरीका विकसित किया गया है।

प्रत्यक्ष विलायक निष्कर्षण विधि विभिन्न पौधों की प्रजातियों से विट-ई निष्कर्षण के लिए उपयोग की जाने वाली सबसे लोकप्रिय विधि है हमारी प्रयोगशाला में हमने एक सॉल्वेंट एक्सट्रेक्शन प्रक्रियाओं को विकसित किया है, जिसमें मूल रूप से तीन चरण शामिल हैं: सैंपल प्रिपरेशन, निष्कर्षण, सॉल्वेंट सोलुबलाइजेशन और इस विधि को सोयाबीन के बीज से विट-ई निकालने के लिए मानकीकृत किया गया है। सोयाबीन के सैंपल से विटामिन-ई के निष्कर्षण और विश्लेषण की विस्तृत विधि नीचे दी गई है।

विट-ई का प्रत्यक्ष विलायक निष्कर्षण विधि दिखाने के लिए योजनाबद्ध आरेख

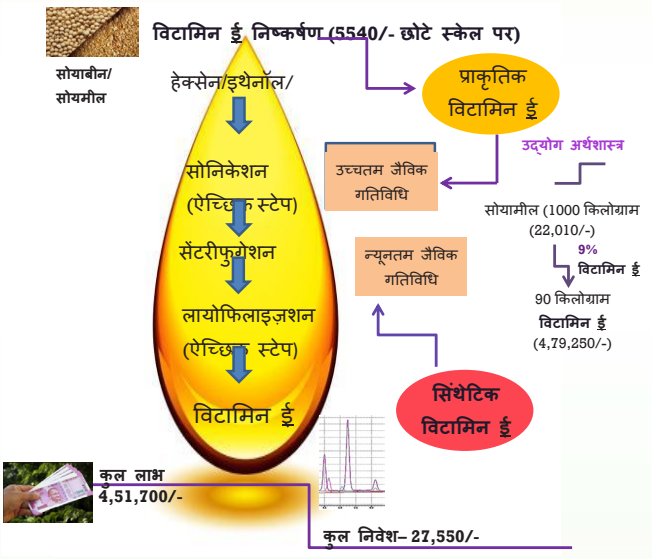

विटामिन- ई की पोषक तत्वों एवं ऑक्सीडेटिव क्षति से संबंधित बीमारियों और विकारों को रोकने में इसकी भूमिका को ध्यान में रखते हुए, विटामिन ई से भरपूर आहार का ई सप्लीमेंट या सेवन उच्च कोलेस्ट्रॉल, हाइपोग्लाइसीमिया, मोटापा और उससे जुड़े रोग जैसे हृदय संबंधी रोग स्तर की रोकथाम में मदद करने के लिए एक उपयुक्त रणनीति होगी। इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए हमें प्राकृतिक विटामिन-ई का उत्पादन करना बहुत जरुरी है

पर्यावरण पर नॉवेल कोरोना वायरस (कोविड-19) का अप्रत्यक्ष प्रभाव

निवेदिता एवं राम कुमार शर्मा

आनुवंशिकी संभाग,
भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110 012

सभ्यता की शुरुआत से ही, मानव ने धीरे-धीरे अपने लाभ के लिए प्रकृति का दोहन करना शुरू कर दिया। बढ़ती जनसंख्या की मांग को पूरा करने के लिए बढ़ते औद्योगीकरण, शहरीकरण और मानवजनित गतिविधियों ने वायुमंडल, जलमंडल और जैवमंडल को प्रदूषित किया। पर्यावरण परिवर्तन 21वीं सदी की सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण चुनौतियों में से एक हैं।

नॉवेल कोरोना वायरस (कोविड-19) खतरनाक महामारियों में से एक है और यह कोरोना विषाणु के कारण होता हैं। इस वर्ष नए कोरोना विषाणु ने विश्व के लगभग हर देश को प्रभावित कर असामान्य प्रभाव उत्पन्न किया हैं। दिसंबर 2019 को चीन के हुबेई प्रांत के वुहान से कोरोना वायरस बीमारी से जुड़े अज्ञात निमोनिया का पहला मामला प्रकाश में आया तत्पश्चात् अल्प अवधि में ही संपूर्ण विश्व कोरोन वायरस के चपेट में आ गया। यह महामारी अत्यधिक संक्रामक श्वसन रोग हैं, जिसका वर्तमान में कोई प्रभावी चिकित्सा रोकथाम/उपचार उपलब्ध नहीं हैं। बीमारी का रोकथाम के लिए कोई वैक्सीन या विशिष्ट दवाओं का आविष्कार अभी तक नहीं हो पाया हैं। संक्रमण से बचाव के लिए सामाजिक दूरी और सफाई, बार-बार हाथ साबुन से धोना अथवा सैनिटाइज़र का प्रयोग और मुंह, नाक और चेहरे पर मास्क का प्रयोग आदि को सबसे प्रभावी पाया गया हैं। इस अत्यधिक संक्रामक बीमारी के प्रसार को रोकने और इसके कुप्रभाव को कम करने के लिए, अभी तक विभिन्न देशों ने बड़े स्तर पर सार्वजनिक और निजी समारोहों पर प्रतिबंध लगाने, कर्फ्यू लगाने, परिवहन पर प्रतिबंध लगाने, सामाजिक दूरी को बढ़ावा देने और देश विशेष की स्थिति के आधार पर देश, राज्यों और शहरों को निर्देश और लंबे समय तक तालाबंदी (लॉकडाउन) करना इत्यादि कठोर महत्वपूर्ण उपायों को अपनाया हैं। कोविड-19, न केवल स्वास्थ्य, अर्थव्यवस्था, संस्कृति और जीवन शैली को प्रभावित कर रहा हैं, बल्कि यह दुनिया के पारिस्थितिक तंत्र और पर्यावरण को भी प्रभावित कर रहा हैं। पृथ्वी और आकाश को एक-दो दशकों के लिए हुए भारी नुकसान से आत्म-विरोहण करने का अवसर मिला हैं। यह ज्ञात हैं कि वायरस का पर्यावरण पर व्यक्तिगत रूप से सीधा प्रभाव नहीं पड़ता हैं। हालांकि, सामाजिक रूप से, ऐसी स्थितियां उत्पन्न होती हैं जो अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण को प्रभावित कर सकती हैं। इसके फलस्वरूप, महामारी ने सकारात्मक, जैसे कि शहरी क्षेत्रों में वायु और पानी की गुणवत्ता में सुधार, और नकारात्मक, जैसे कि स्वच्छता उपभोग्य सामग्रियों के निपटान के कारण तटरेखा प्रदूषण संबंधित पर्यावरणीय प्रभावों को जन्म दिया हैं। तालाबंदी के कार्यान्वयन के कारण बड़े पैमाने पर औद्योगिक गतिविधियों और परिवहन प्रतिबंधित हो गया हैं, लोगों के द्वारा जीवाश्म ईंधन का कम उपयोग हो रहा हैं, जिसके कारण पर्यावरण पर इन आर्थिक गतिविधियों के प्रतिकूल प्रभाव में काफी कमी आई हैं तथा पर्यावरणीय परिस्थितियों में सुधार हुआ हैं। सीपीसीबी (केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, भारत, 2020) द्वारा उपलब्ध कराए गए आंकड़ों के अनुसार देश भर के 88 शहरों में तालाबंदी प्रक्रिया शुरू होने के बाद से प्रदूषण के स्तर में भारी गिरावट पाई गई है। कोरोना विषाणु रोग (कोविड-19) तालाबंदी ने लाखों लोगों को प्रतिकूल परिस्थितियों में डाल दिया हैं और फिर भी पर्यावरण के लिये जश्न मनाने का एक कारण हैं। इस संकट के समय में प्रकृति के साथ प्रतिबंधित मानव संपर्क प्रकृति और पर्यावरण के लिए एक आशीर्वाद के रूप में प्रकट हुआ हैं। दुनिया भर की रिपोर्टों से संकेत मिला कि राष्ट्रव्यापी तालाबंदी में, प्रदूषण का स्तर कम हुआ, वायु और पानी की गुणवत्ता सहित पर्यावरणीय स्थितियों में सुधार हुआ, और जैवविविधता फिर से अनुरक्षित हुई।

सकारात्मक प्रभाव:

1. वायु प्रदूषण में कमी: कोविड-19 के कारण तालाबंदी का प्रमुख प्रभाव हवा की गुणवत्ता पर देखा जा सकता हैं, जिसे सभी द्वारा अनुभव किया जा रहा हैं और विभिन्न आधिकारिक रिपोर्टों में दर्ज किया गया हैं। वायु प्रदूषण गैसों और कणों के विषम मिश्रण के कारण होता हैं। नाइट्रोजन डाइऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड, पीएम 10, पीएम 2.5, कार्बन मोनोऑक्साइड और ओज़ोन वायु प्रदूषण के प्रमुख गैसीय घटकों के रूप में जाने जाते हैं। लोगों के स्वास्थ्य के लिए वायु की गुणवत्ता आवश्यक हैं; हालांकि, विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) के अनुसार दुनिया की आबादी का 91% उन जगहों पर रहता हैं जहां प्रदूषित हवा की गुणवत्ता की अनुमोदित सीमा से अधिक या बहुत अधिक हैं। प्रत्येक वर्ष विश्व भर में वायु प्रदूषण के कारण अनुमानित 70 लाख लोगों के जीवन को प्रभावित करता हैं। ऐसा अनुमानित है कि दुनिया भर में, लगभग 16% फेफड़े के कैंसर से होने वाली मृत्यु, 25% पुरानी प्रतिरोधी फुफ्फुसीय रोग (सीओपीडी) से होने वाली मृत्यु, लगभग 17% हृदय रोग और स्ट्रोक और लगभग 26% श्वसन संक्रमण से होने वाली मृत्यु का कारण वायु प्रदूषण है (डब्ल्यूएचओ)। पिछले कुछ वर्षों से भारतीय शहर हमेशा दुनिया के शीर्ष 20 सबसे प्रदूषित शहरों में

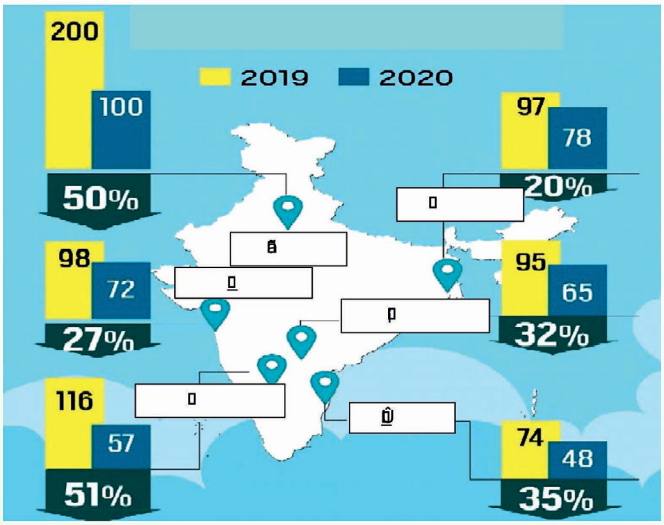

चित्र-1: वायु गुणवत्ता सूचकांक, 25 मार्च - 25 अप्रैल तक दोनों वर्ष 2019 और 2020 गणना दिखाया कि इस वर्ष में AQI का स्तर पिछले वर्ष की तुलना में बहुत कम है। स्रोत-केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड

शामिल हो रहे हैं और विश्व स्वास्थ्य संगठन और केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा अनुशंसित वायु गुणवत्ता मानकों को पार कर रहे हैं। दिल्ली को वायु प्रदूषण की दृष्टि से दुनिया का सबसे प्रदूषित शहर माना जाता हैं। कोविड-19 महामारी की शुरुआत से पहले, हमारे आस-पास की वायु का स्तर सांस लेने के लिए हानिकारक था। दुनिया भर के कई देशों में तालाबंदी और मानव और औद्योगिक गतिविधियों में व्यवधान के परिणामस्वरूप, वायु प्रदूषण में उल्लेखनीय कमी आई हैं। वर्ष 2019 की तुलना में 2020 में, तालाबंदी अवधि के दौरान दिल्ली, मुंबई, हैदराबाद, कोलकाता और चैन्नई में एयर क्वालिटी इंडेक्स में स्पष्ट गिरावट देखी गई (चित्र-1)।

नाइट्रोजन डाइऑक्साइड आमतौर पर जीवाश्म ईंधन का दहन, बिजली संयंत्रों, औद्योगिक सुविधाओं और वाहनों से वातावरण में उत्सर्जित होता हैं। नाइट्रोजन डाइऑक्साइड के बढ़े हुए स्तर में सांस लेने का मुख्य प्रभाव श्वसन समस्याओं की संभावना बढ़ जाती हैं। पिछले वर्ष के तुलना में इस वर्ष नाइट्रोजन डाइऑक्साइड की सांद्रता के स्तर में कमी रिकॉर्ड की गई हैं

जिसका कारण तालाबंदी के दौरान जीवाश्म ईंधन के दहन में कमी और अन्य मानवजनित गतिविधियों में गिरावट हैं। मार्च और अप्रैल 2020 के दौरान विभिन्न देशों के अधिकांश स्थानों में 20% से 80% तक नाइट्रोजन ऑक्साइड के स्तर में कमी पाई गई (चित्र-2)। शोधकर्ताओं के हाल ही में किए गए अध्ययनों में चीन, अमेरिका, इटली, स्पेन और फ्रांस में 20-30% नाइट्रोजन डाइऑक्साइड की कमी की सूचना दी गई हैं। पूर्वोत्तर संयुक्त राज्य अमेरिका में भी नाइट्रोजन डाइऑक्साइड के उत्सर्जन में 30% की कमी अवलोकन किए गए हैं (नासा, 2020)। भारत भर में उपग्रह डेटा का अध्ययन करने वाले लेखों ने 2019 की तुलना में बंद (15 मार्च से 30 अप्रैल 2020) के अवधि के आसपास नाइट्रोजन-डाइऑक्साइड सांद्रण स्तर में लगभग 15 प्रतिशत की कमी दिखाई हैं।

पीएम (पार्टिकुलेट मैटर), वायु प्रदूषक को वर्गीकृत करने के लिए सामान्य शब्द हैं, जो हवा में निलंबित कणों, जो रचना और आकार में भिन्न होते हैं, की

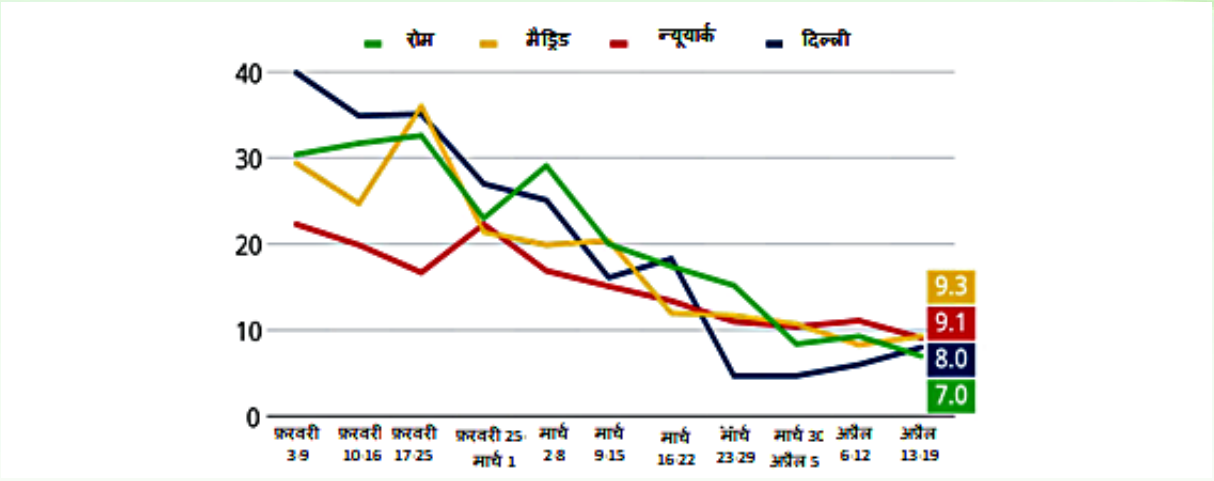

चित्र-2: यह चार्ट फरवरी से अप्रैल 2020 तक रोम, मैड्रिड, न्यूयॉर्क और नई दिल्ली में हवा में NO_2 की साप्ताहिक औसत सांद्रता को दर्शाता है। छवि क्रेडिट: स्टेटिस्ता इन्फोग्राफिक न्यूज़लैटर

उपस्थिति के विषय में जानकारी देता है। इन निलंबित कणों का आकार 2.5 मिमी (पीएम 2.5) और 10 मिमी (पीएम 10) के बीच होता हैं। औद्योगिक सुविधाएं, पावर प्लांट, वाहन, भस्मक, धूल और आग, पार्टिकुलेट मैटर के प्रमुख स्रोत हैं। पार्टिकुलेट मैटर में सूक्ष्म ठोस या तरल बूंदें होती हैं, जो इतनी छोटी होती हैं कि उन्हें श्वसन प्रणाली के माध्यम से शरीर के अन्दर पहुंच कर गंभीर स्वास्थ्य समस्याओं का कारण बन सकता हैं। पार्टिकुलेट मैटर फेफड़े या हृदय रोग, गैर-दिल के दौरे, अस्थमा, फेफड़ों की कार्यक्षमता में कमी, सांस की बीमारियों, खांसी आदि से पीड़ित रोगियों में समय से पहले मृत्यु का कारण बन सकते हैं। पीएम 10 और पीएम 2.5 की सांद्रता में पूर्व-तालाबंदी चरण की तुलना में अधिकतम कमी (>50%) देखी गई है तथा विभिन्न आंकड़ों से भी यह स्पष्ट है कि दुनिया भर के बड़े शहरों में हवा में पार्टिकुलेट मैटर की सांद्रता में लगभग 10% की कमी पाई गई है।

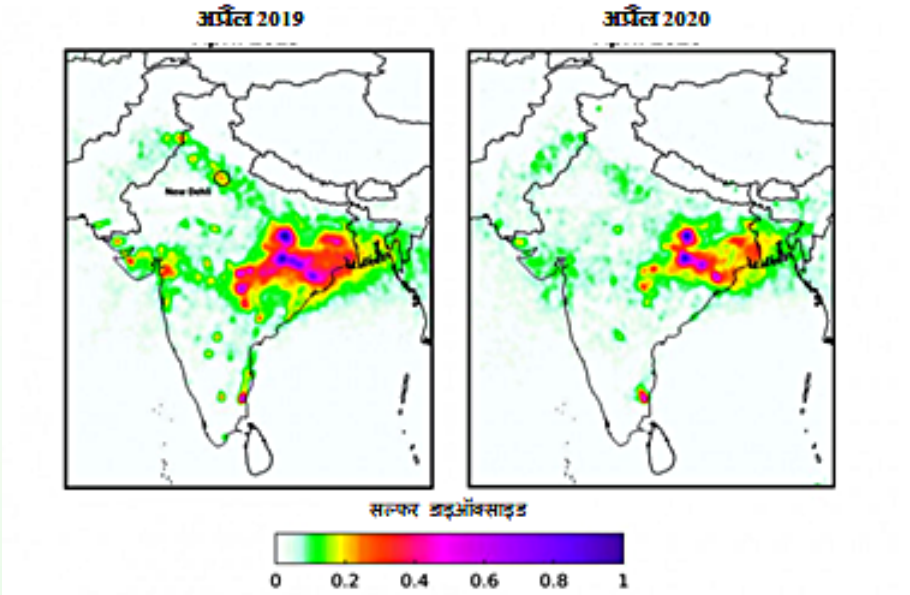

चित्र-3: नक्शे अप्रैल 2019 और 2020 में औसत सल्फर डाइऑक्साइड सांद्रता को दर्शाते हैं। लाल और बैंगनी रंग के गहरे रंग वायुमंडल में गैस की अधिक सांद्रता को दर्शाते हैं। यूरोपीय संघ कोपरनिकस कार्यक्रम से कोपर्निकस प्रहरी -5 पी उपग्रह द्वारा संकलित (स्रोत: ईएसए)

सल्फर डाइऑक्साइड भी वायु प्रदूषकों के महत्वपूर्ण संकेतकों में से एक हैं जो कोयला, पेट्रोलियम, और रासायनिक ईंधन उत्सर्जन के दहन से संबंधित हैं। इसी तरह, सल्फर डाइऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड, और ओजोन के दीर्घकालिक अनावरण से मानव की श्वसन प्रणाली को नुकसान पहुंच सकता हैं, जिसके कारण सांस लेने में तकलीफ सहित कभी-कभार मौत भी हो सकती हैं। यूरोपीय अंतरिक्ष एजेंसी द्वारा जारी किए गए डेटा (ईएसए) दिखाता है कि जब कोरोनवायरस महामारी को रोकने के लिए देश दो महीने से अधिक समय तक बंद रहा, जिसके फलस्वरूप भारत में सल्फर डाइऑक्साइड सांद्रता लगभग 40 प्रतिशत कम हो गई (चित्र-3)।

ओजोन वायु प्रदूषण का एक अतिरिक्त उप-उत्पाद हैं जो सीधे किसी भी स्रोत से उत्सर्जित नहीं होता हैं, लेकिन नाइट्रोजन और अन्य वाष्पशील कार्बनिक यौगिकों (वीओसी) के ऑक्साइड और सूर्य के प्रकाश और गर्मी के प्रभाव में हवा में गैसों के बीच रासायनिक प्रतिक्रियाओं द्वारा बनता हैं। अत्यधिक प्रतिक्रियाशील ओजोन गैस (ओजोन) पृथ्वी के समताप मंडल में सूर्य से पराबैंगनी विकिरण के लिए फ़िल्टर रूप में कार्य कर जीवन की रक्षा करने में मदद करती हैं। तालाबंदी में ओजोन परत को कुछ हद तक पुनर्जीवित पाया गया हैं। हालांकि, जमीन-स्तर पर, ओजोन एक प्रदूषक के रूप में कार्य करता हैं जो कमजोर समूहों के बीच कई स्वास्थ्य समस्याओं को सक्रिय कर सकता हैं, और श्वसन और हृदय रोगों से जुड़ा हुआ माना जाता हैं। तालाबंदी के कारण ओजोन स्तर पर मिश्रित असर हुआ हैं और कई मामलों में ओजोन सांद्रता में 1.5-2 के कारक से वृद्धि हुई। नाइट्रोजन डाइऑक्साइड उत्सर्जन में बड़ी कमी के कारण ओजोन और रात के समय एनओ 3 रैडिकल उत्पत्ति में वृद्धि हुई हैं, और परिणामस्वरूप, वायुमंडलीय ऑक्सीकरण क्षमता में उत्पत्ति से इन क्षेत्रों में ओजोन सांद्रता में बढ़ोतरी हुई। "अध्ययन बताते हैं," ओजोन को केवल तभी नियंत्रित किया जा सकता हैं जब सभी स्रोतों से गैसों को नियंत्रित किया जाता हैं। "

एक रिपोर्ट के अनुसार तालाबंदी के बाद, मानवजनित प्रदूषकों जैसे कि नाइट्रोजन डाइऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड, पार्टिकुलेट मैटर 2.5 और पार्टिकुलेट मैटर 10 की सांद्रता में गिरावट क्रमशः 19, 9, 8 और 7 शहरों में देखी गई। उपग्रह प्रणाली से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार, राष्ट्रीय तालाबंदी ने देश भर में वायु गुणवत्ता पर अपना सकारात्मक प्रभाव दिखाना शुरू कर दिया एवं बड़े शहरों में प्रदूषण का स्तर लगभग 40-50% तक गिर गया हैं। महाद्वीपीय पैमाने पर उपग्रह निरीक्षण के परिणामों से पता चला कि नाइट्रोजन डाइऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड और एयर ऑप्टिकल घनत्व की सांद्रता 2020 में तालाबंदी अवधि के दौरान सभी महाद्वीपों में बेसलाइन अवधि के लिए उनके औसत की तुलना में काफी कम हो गई थी। तालाबंदी की घटनाओं ने 27 देशों में वायु प्रदूषण के स्तर को लगभग 20% कम कर दिया हैं तथा दुनिया के सबसे प्रदूषित शहरों जैसे बैंगलोर, बीजिंग, बैंकॉक, दिल्ली, नानजिंग, न्यूयॉर्क, लंदन, पेरिस, सियोल, सिडनी और टोक्यो में वायु गुणवत्ता में सुधार देखा गया।

राष्ट्रीय स्तर पर तालाबंदी के कारण पूरे भारत में भी हानिकारक प्रदूषकों जैसे नाइट्रोजन डाइऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड, ओजोन और पार्टिकुलेट मैटर उत्सर्जन में महत्वपूर्ण कमी देखी गई हैं।

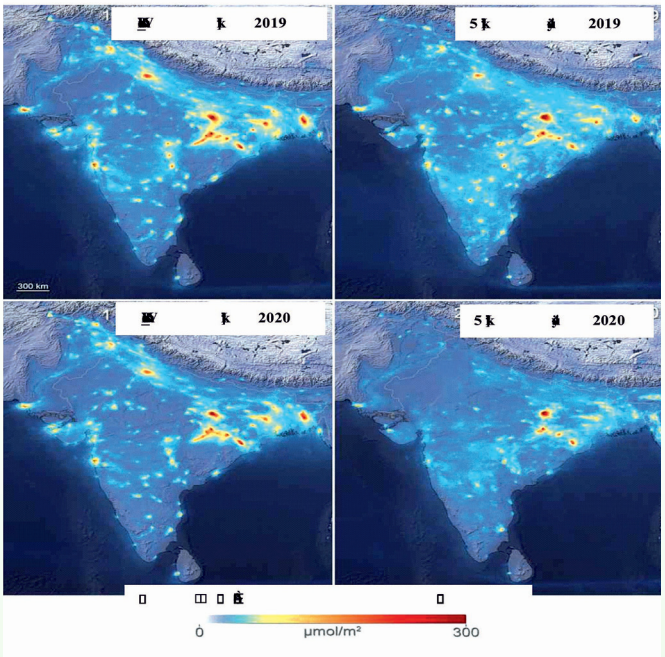

चित्र-4: कोपर्निकस सेंटिनल -5 पी उपग्रह के डेटा का उपयोग कर बनाए गए नए उपग्रह मानचित्रों ने भारत में 2019 की तुलना में 1 जनवरी से 24 मार्च 2020 (लॉकडाउन से पहले) और 25 मार्च से 20 अप्रैल 2020 तक (लॉकडाउन के दौरान) औसत नाइट्रोजन डाइऑक्साइड सांद्रता में कमी दिखाई। छवि क्रेडिट: ईएसए

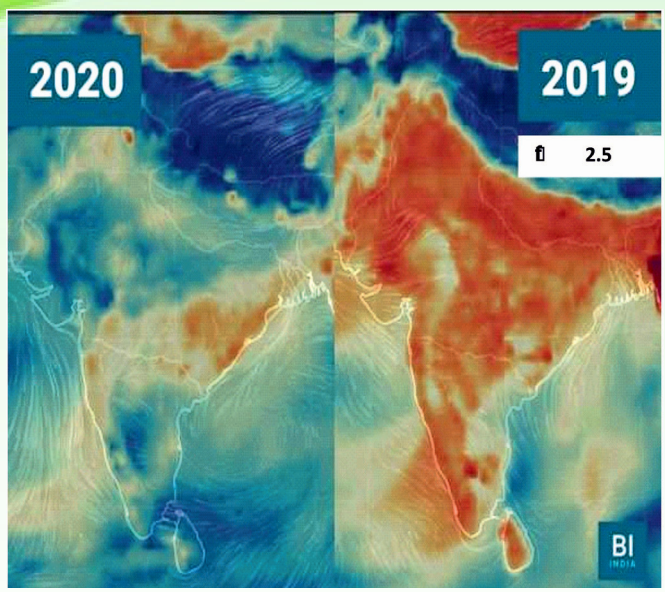

चित्र-5: वातावरण में पीएम 2.5 का 2019 और 2020 में स्तर। छवि क्रेडिट: नेशनल एरोनॉटिक्स एंड स्पेस द्वारा निर्मित मौसम मानचित्र ।

एक रिपोर्ट के अनुसार तालाबंदी ने भारत के 103 शहरों की वायु गुणवता में सुधार किया (चित्र-4 और चित्र-5)। एक अन्य अध्ययन में भारत देश के 22 शहरों में, पीएम10, पीएम 2.5, नाइट्रोजन डाइऑक्साइड और कार्बन मोनोऑक्साइड सांद्रता का 2017 से 2020 तक 16 मार्च से 14 अप्रैल के दौरान विश्लेषण किया गया और यह पाया गया हैं कि तालाबंदी अवधि के दौरान पिछले वर्षों की तुलना में पीएम10, पीएम 2.5, नाइट्रोजन डाइऑक्साइड और कार्बन मोनोऑक्साइड सांद्रता में 43%, 31%, 18% और 10% तक की क्रमशः गिरावट आई हैं।

2. कार्बन उत्सर्जन में कमी: मई 2020 में प्रकाशित एक अध्ययन में पाया गया कि अप्रैल की शुरुआत में तालाबंदी के उपायों के दौरान हवाई यातायात में कमी, तेल शोधन, और कोयले की कम खपत के कारण दैनिक वैश्विक कार्बन उत्सर्जन में 17% की गिरावट आई। फलस्वरूप 7% तक वार्षिक कार्बन उत्सर्जन में गिरावट हो सकती हैं, जो शोधकर्ताओं के अनुसार द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से सबसे बड़ी गिरावट होगी। द गार्जियन (ब्रिटिश दैनिक समाचार पत्र) के अनुसार, "चीन में, फरवरी 2020 की शुरुआत और मध्य मार्च 2020 के बीच, 2019 की उसी अवधि में तुलना में कार्बन उत्सर्जन में लगभग 18% की गिरावट आई। 250 मिलियन कम मीट्रिक टन कार्बन डाइऑक्साइड का उत्पादन हुआ और यूरोप में कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन में लगभग 58% की कमी आई हैं। अंतरराष्ट्रीय ऊर्जा एजेंसी 2020 के दौरान संयुक्त राज्य अमेरिका की ऊर्जा से संबंधित कार्बन उत्सर्जन में 7.5% वार्षिक कमी का अनुमान लगा रही हैं। कार्बन ब्रीफ द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट से पता चलता हैं कि महामारी वैश्विक रूप से 2019 की तुलना में 1,600 मिलियन मीट्रिक टन कार्बन मोनोऑक्साइड उत्सर्जन में कमी कर सकती हैं, जो क्षेत्र में लगभग उत्सर्जन में 4% की गिरावट के बराबर होगा।

3. तापमान में कमी: वातावरण में तापमान वृद्धि के प्रमुख कारण ग्रीनहाउस गैसों जैसे की पीएम, नाइट्रोजन डाइऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड इत्यादि की सांद्रता को माना जाता हैं। तालाबंदी के दौरान अल्पावधि और मध्यावधि विमानन यात्रा में कमी, एवं अन्य कारणों से ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में कमी आई हैं फलस्वरूप तालाबंदी की अवधि में कुछ स्थानों के तापमान में तालाबंदी के पूर्व अवधि से लगभग 3 से 5 डिग्री सेल्सियस कम दर्ज की गई हैं।

4. जल प्रदूषण में कमी: दशकों से, तेजी से शहरीकरण, औद्योगिकीकरण और अति-दोहन के कारण जलमंडल गंभीर रूप से प्रदूषित हो गया हैं। जल प्रदूषण जल निकायों (जैसे झीलों, नदियों, महासागरों, जलभृतों और भूजल) का प्रदूषण हैं, यह तब होता हैं जब प्रदूषक (कण, रसायन या पदार्थ जो पानी को दूषित बनाते हैं) को पर्याप्त उपचार के बिना प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जल निकायों में स्रावित कर दिया जाता हैं। जल प्रदूषण का मुख्य प्रभाव जलीय (जल) जानवरों की मृत्यु, भोजन-जंजीरों का विघटन, रोग-अतिसार, हैंजा, हेपेटाइटिस आदि हैं। तालाबंदी अवधि के दौरान, प्रदूषण के प्रमुख औद्योगिक स्रोत जो जलीय पारिस्थितिक तंत्र को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करते हैं (औद्योगिक अपशिष्ट निपटान, कच्चे तेल, भारी धातु, प्लास्टिक, बिजली संयंत्रों, निर्माण गतिविधियों, परिवहन आदि) कम गए हैं या पूरी तरह से बंद हो गए हैं जिससे जल प्रदूषण की मात्रा में भारी कमी

पाई गई हैं। तालाबंदी से कई शहर की झीलें और नदी कम प्रदूषित दिखाई देती हैं इनकी छवियां कई सोशल मीडिया प्लेटफार्मों पर सामने आई हैं। तालाबंदी अवधि के दौरान लगाए गए प्रतिबंधों के परिणाम स्वरूप और सभी उद्योगों से अपशिष्ट के बहुत कम योगदान होने के कारण, यमुना और गंगा नदियों में पानी की गुणवत्ता में महत्वपूर्ण सुधार देखा गया। द न्यू इंडियन एक्सप्रेस ने बताया कि तालाबंदी के समय में भारत में गंगा नदी की जल गुणवत्ता में 40-50% सुधार हुआ हैं। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सीपीसीबी) के वास्तविक समय के पानी की निगरानी के आंकड़ों के अनुसार, हाल के दिनों में गंगा की औसत जल गुणवत्ता, स्नान और वन्यजीवों और मत्स्य पालन के प्रचार के लिए उपयुक्त हैं।

एक अध्ययन में प्री-तालाबंदी चरण की तुलना में तालाबंदी चरण के दौरान यमुना नदी में पीएच, ईसी, डीओ, बीओडी और सीओडी की सांद्रता में क्रमशः 1-10%, 33-66%, 51%, 45-90% और 33-82% की गिरावट देखी गई। इटली के कड़े कोरोनोवायरस तालाबंदी के बीच इटली की घुमावदार नहरों के लिए प्रसिद्ध वेनिस में, पानी की प्रवाह और गुणवत्ता में सुधार हुआ हैं।

5. ध्वनि प्रदूषण में कमी: ध्वनि-प्रदूषण, अवांछित या अत्यधिक शोर जो मानवजनित गतिविधियों (उदाहरण के लिए, औद्योगिक या वाणिज्यिक गतिविधियों), इंजन वाहनों के पारगमन और प्रसार प्रणालियों धुनों द्वारा उत्पन्न होता हैं। ध्वनि प्रदूषण से स्वास्थ्य समस्याएं होती हैं और पारिस्थितिक तंत्र की प्राकृतिक स्थितियों में परिवर्तन होता है। बहरापन, उच्च रक्तचाप, दिल की विफलता इत्यादि ध्वनि प्रदूषण के कुछ गंभीर परिणाम हैं। अधिकांश सरकारों द्वारा तालाबंदी के उपायों को लागू करने से निजी और सार्वजनिक परिवहन के उपयोग में काफी कमी आई है और साथ ही, व्यावसायिक गतिविधियां लगभग पूरी तरह से रुक गई हैं। इन सभी परिवर्तनों के कारण दुनिया के अधिकांश शहरों में शोर का स्तर काफी कम हो गया हैं। मानव गतिविधियों से जुड़े "शोर" जो कि भूकंपीय रिकॉर्ड को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करते हैं, दुनिया भर में तेजी से गिरा जिसकी वजह से भूकंपीय तरंगों और भूकंप की स्थिति का पता लगाने की क्षमता में सुधार हुआ हैं।

6. जैव विविधता: जैव विविधता या जैविक विविधता का तात्पर्य विभिन्न प्रकार के पौधों और जानवरों की प्रजातियां का उनके प्राकृतिक वातावरण या एक विशेष निवास-स्थान में अस्तित्व से हैं। प्रकृति हमेशा सभी जीवों को

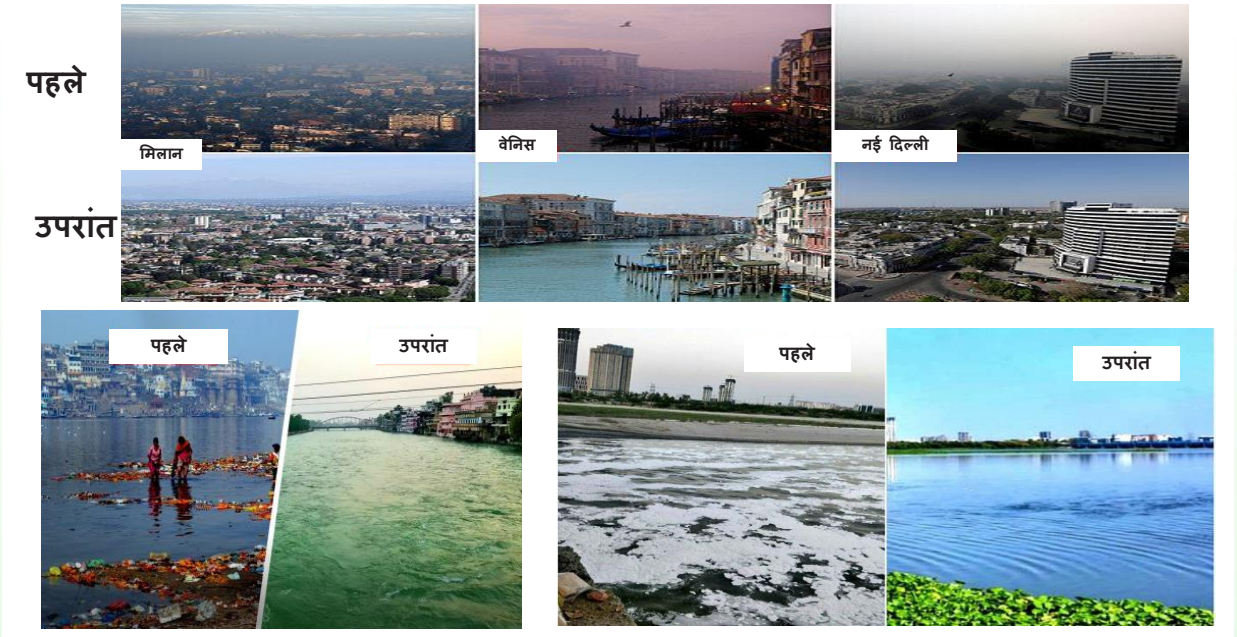

चित्र-6: लॉकडाउन से पहले और उपरांत की छवियां

उपयुक्त वातावरण प्रदान करके उनके बीच विविधता और सह-अस्तित्व को बढ़ावा देती हैं। मानव ने हमेशा अनुकूल माहौल पाने के लिए पर्यावरण और अपने समाज को नियंत्रित करने की कोशिश की जिससे कारण जैव विविधता संकट में हैं। कोविड-19 के प्रकोप ने मानवविज्ञानी गतिविधियों के साथ साथ प्राकृतिक संसाधनों की अत्यधिक दोहन को कम कर दिया हैं। तालाबंदी के कारण हम सब एक स्वच्छ पर्यावरण देख रहे हैं जहां लगभग सभी जानवरों सहित पक्षियों आदि को पनपने के लिए पर्याप्त अवसर मिला हैं। ये सब पारिस्थितिक संतुलन और जैव विविधता के लिए अच्छे संकेत हैं और साथ ही वैज्ञानिकों को यह यह समझने का मौका देता हैं कि मनुष्य शहरी जैव विविधता को कैसे बदलते हैं। मनुष्यों के अभूतपूर्व समवर्ती कारावास प्राकृतिक प्रणालियों और वन्य जीवन पर मानव उपस्थिति के प्रभावों की पहचान करने और संरक्षण जीव विज्ञान की हमारी समझ और अभ्यास को आगे बढ़ाने का एक अनूठा अवसर प्रदान करता हैं। कोरोना विषाणु-प्रेरित तालाबंदी शहरी जीवन की दैनिक लय को बदल रहा हैं, जो कि ऐसे जानवरों पर प्रकाश डाल रहा हैं, जो आमतौर पर छिपे रहना पसंद करते हैं। कम मानवीय गतिविधि, शोर और वायु प्रदूषण के कारण क्षेत्रों में जानवरों पक्षियों की आबादी में वृद्धि देखी गई। तालाबंदी के कारण पक्षियों और जानवरों को खाली सड़कों और आसमान स्वतंत्र घूमने के लिए मिला हैं, फसलों और अन्य पौधों पर कीट परागण बहुतायत में दिखाई दिए हैं। कोविड-19 लॉकिंग चरण के दौरान नदी के मुहाने पर भी मत्स्य-प्लैंकटन विविधता पाई गई और इसका कारण पानी की बेहतर गुणवत्ता और मछली बीज संग्रह की कुल प्रतिबंधित होना हो सकता हैं। पहले की तुलना में निवासी पक्षी भी बहुत अधिक प्रजनन कर रहे हैं। यहां तक कि मानव हस्तक्षेप की कमी के कारण, समुद्री कछुओं को उन क्षेत्रों में लौटते हुए देखा गया हैं जहां वे एक बार अपने अंडे देने से बचते थे।

7. जीवनरक्षी: तालाबंदी के दौरान नए कोरोनोविषाणु के कारण होने वाली बीमारी के कारण चल रही मृत्यु के बावजूद, विभिन्न अन्य कारणों से होने वाली मृत्यु दर में कमी आई है। उदाहरण के लिए, भारत में हर महीने 12,000 से अधिक लोग सड़क दुर्घटनाओं में अकाल मृत्यु के शिकार होते थे परंतु तालाबंदी के दौरान इस संख्या में भारी कमी आती है। पर्यावरण संसाधन अर्थशास्त्री मार्शल बर्क की गणना हैं कि चीन में प्रदूषण में कमी के दो महीने ने संभवत: पांच साल से कम उम्र के 4,000 बच्चों और 70 साल से अधिक उम्र के 73,000 वयस्कों (जो अन्यथा प्रदूषण के उच्च स्तर से प्रभावित होते हैं) को बचाया हैं। देश के सभी हिस्सों में बेहतर स्वच्छता स्तर और स्वास्थ्य सेवाओं के उन्नयन से कई बीमारियों का बोझ कम हो जाता है। अपर्याप्त स्वच्छता कई उपेक्षित उष्णकटिबंधीय रोगों में एक प्रमुख कारक है, जिसमें आंतों के कीड़े, सिस्टोसोमियासिस और ट्रेकोमा शामिल है। यह अनुमान हैं कि प्रतिवर्ष अपर्याप्त स्वच्छता की वजह से 432000 डायरियल मौतें होती हैं। तालाबंदी के दौरान इस संख्या में भारी कमी आई हैं। वर्तमान में सड़कों पर जहाजों और वाहनों द्वारा हमलों से बहुत कम जानवरों की भी मौत हुई है।

8. स्वच्छ समुद्र तट तथा पर्यटन स्थल: समुद्र तट उन महत्वपूर्ण प्राकृतिक पूंजी संपत्तियों में से एक हैं जो तटीय क्षेत्र पाई जाती हैं हालांकि, गैर-जिम्मेदार लोगों द्वारा उपयोग करने से दुनिया के कई समुद्र तट प्रदूषण का कारण बने हैं। अधिकांश सरकारों द्वारा अपनाए गए तालाबंदी के उपायों ने दुनिया भर के कई समुद्र तटों को साफ कर दिया है। यह समुद्र तटों पर जाने वाले पर्यटकों द्वारा उत्पन्न कचरे में कमी के परिणामस्वरूप हैं। पर्यटन स्थलों जैसे जंगलों, पहाड़ी क्षेत्रों आदि में प्रदूषण का स्तर भी काफी हद तक कम हो रहा हैं।

9. वनस्पतियों पर प्रभाव: पौधे भी साफ़ हवा और पानी में बेहतर तरीके से बढ़ रहे हैं और अधिक व्याप्ति और ऑक्सीजन का उत्पादन कर रहे हैं। तालाबंदी के दौरान कोई मानव हस्तक्षेप नहीं हैं इसलिए पारिस्थितिक तंत्र को काफी हद तक पुनर्प्राप्त किया जा रहा है। तालाबंदी के बाद नाइट्रोजन डाइऑक्साइड के स्तर में कमी काफी हद तक जमीनी स्तर ओजोन की सांद्रता को प्रभावित करेगी और फसलों, जंगलों, घास के मैदानों और पारिस्थितिकी तंत्र पर नकारात्मक प्रभाव को कम कर सकती है। एक अध्ययन में पाया गया है कि एशिया में फसल उगाने वाले क्षेत्रों में 12 पीपीबी और उत्तरी अमेरिका

और यूरोप में 6 पीपीबी तक ओजोन की कमी से गेहूं में कुल मिलाकर 2% और 8% के बीच उपज में सुधार हो सकता हैं।

नकारात्मक प्रभाव:

1. चिकित्सा अपशिष्ट की वृद्धि: कोरोनोवायरस के मामलों के कारण डिस्पोजेबल व्यक्तिगत सुरक्षात्मक उपकरण (पीपीई) किट, दस्ताने, मास्क और आईवी बैग जैसी वस्तुओं के उपयोग में वृद्धि हुई हैं। ये वस्तुएं पुन: उपयोग के योग्य नहीं हैं। डिस्पोजेबल फेस मास्क, पीपीई किट, दस्ताने इत्यादि में पेट्रोलियम आधारित पॉलिमर जैसे पॉलीप्रोपाइलीन, पॉलीस्टाइनिन, पॉली कार्बोनेट, पॉलीइथाइलीन और पॉलिएस्टर होते हैं, जो गैर-बायोडिग्रेडेबल होते है और पर्यावरण प्रदूषण को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। इनके अभूतपूर्व उपयोग के परिणामस्वरूप दुनिया भर में प्लास्टिक कचरे का बोझ बढ़ गया और जल स्रोतों में जारी होने पर जलीय जीवन के लिए भी जहरीला साबित हो रहा हैं। चैनल न्यूज एशिया के अनुसार, मेडिकल कचरे की मात्रा में 60% की वृद्धि हुई है। डब्ल्यूएचओ के अनुमान के अनुसार, कोविड-19 से सामना करने के लिए हर महीने लगभग 89 मिलियन मेडिकल मास्क की आवश्यकता थी। मई 2020 तक, कई रिपोर्टों ने चिकित्सा गतिविधियों या व्यक्तिगत सुरक्षा से उत्पन्न होने वाले सैनिटरी निपटान के कारण जलीय पर्यावरण विशेष रूप से तट रेखाओं (जैसे, हांगकांग और कनाडा में) पर महत्वपूर्ण नुकसान का दावा किया हैं।

2. जैविक और अकार्बनिक अपशिष्ट की वृद्धि: तालाबंदी में घर पर अलग-अलग उपभोक्ताओं के द्वारा, ऑनलाइन खरीद और भोजन वितरण की संख्या में वृद्धि हुई है। पैनिक खरीद ने भी खाद्य अपव्यय को बढ़ावा दिया है इस प्रकार, जैविक और अकार्बनिक अपशिष्ट पदार्थों दोनों कचरे में वृद्धि होती है। यह जैविक अपशिष्ट अपने आप ही अपघटित होकर मीथेन गैस निकलता हैं जो की एक ग्रीनहाउस गैस और ग्लोबल वार्मिंग को बढ़ाने में योगदान करती है।

3, एकल उपयोग प्लास्टिक की वृद्धि: दुनिया भर में ऐसा माना जा रहा हैं कि पुन: प्रयोज्य पैकेजिंग से वायरस को ले जाने का खतरा अधिक होता हैं। इसके कारण, अधिक लोग डिस्पोजेबल पैकेजिंग के उपयोग को प्राथमिकता देते हैं, जो ज्यादातर प्लास्टिक है। जिन कंपनियों ने एक बार उपभोक्ताओं को अपने बैग लाने के लिए प्रोत्साहित किया था, वे एकल-उपयोग पैकेजिंग में तेजी से बदल गए हैं। यह सब प्लास्टिक हमारे जल निकासी प्रणालियों या जल निकायों में जमा हो रहे है और हमारे पर्यावरण को प्रदूषित कर रहे हैं।

4. अपशिष्ट रीसाइक्लिंग में कमी: अब पहले से कहीं अधिक, मेडिकल पीपीई और प्लास्टिक पैकेजिंग के बढ़ते उपयोग के कारण अपशिष्ट प्रबंधन की तीव्र मांग है। छोटे नगरपालिकाओं और सीवेज उपचार संयंत्रों ने विषाणु के प्रसार से जुड़े जोखिमों के कारण रीसाइक्लिंग कार्यक्रमों को कम कर दिया हैं।

5. रासायनिक कीटाणुनाशकों का उपयोग: कई देशों ने अपशिष्ट जल उपचार संयंत्रों को अपने कीटाणुशोधन दिनचर्या (मुख्य रूप से क्लोरीन के उपयोग के माध्यम से) को मजबूत करने के लिए कहा है ताकि कोरोनो विषाणु को अपशिष्ट जल के माध्यम से फैलने से रोका जा सके। इसके विपरीत, पानी में क्लोरीन की अधिकता लोगों के स्वास्थ्य और पानी की गुणवत्ता पर हानिकारक प्रभाव उत्पन्न कर सकती हैं। हम सफ़ाई के लिए सोडियम हाइपोक्लोराइट स्प्रे जैसे रासायनिक कीटाणुनाशकों का भी उपयोग कर रहे हैं, जिसका पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य पर अप्रत्यक्ष प्रभाव हो सकता हैं।

6. अन्य नकारात्मक प्रभाव: कोविड प्रभावित देशों में राजकोषीय घाटे की बहुत संभावना हैं और संकट से लड़ने के लिए कोई भी देश अपना आर्थिक विकास, रोजगार के स्तर और स्वास्थ्य प्रणालियों में सुधार के लिए वैध मांगें को पूरा करेगा और जलवायु परिवर्तन और जैव विविधता के नुकसान से सफलतापूर्वक निपटने के लिए निवेश नहीं करेगा जिससे पर्यावरण सबसे गंभीर रूप से प्रभावित हो सकती है। उदाहरण के लिए, इक्वाडोर ने पर्यावरणीय नियमों को लागू करने के लिए जिम्मेदार मंत्रालय के बजट कटौती की घोषणा की (बीबीसी न्यूज़ 2020) और

चित्र-7. पर्यावरण पर नॉवेल कोरोना वायरस (कोविद -19) का अप्रत्यक्ष प्रभाव

मैक्सिको में भी सभी सरकारी संस्थाओं के परिचालन बजट को 75% से कम कर दिया है। भले ही देशों के पास अपेक्षाकृत मजबूत पर्यावरणीय कानूनी ढांचा हो, लेकिन नियमों की निगरानी और उन्हें लागू करने के लिए एक बजट के बिना यह ढांचा बेकार हैं। जलवायु पर कोविड का एक अन्य अप्रत्यक्ष प्रभाव: जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र की वार्षिक बैठक, वैश्विक प्रदूषण के मुद्दे को संबोधित करने वाली सबसे महत्वपूर्ण अंतरराष्ट्रीय घटनाओं में से एक कॉप-26 का स्थगन हैं। इस वर्ष की घटना, ग्लासगो में आयोजित होने वाली है, लेकिन वर्तमान में 2021 तक स्थगित कर दी गई है।

अंत में, हम ये कह सकते हैं कि कोविड-19 संबंधित तालाबंदी, पर्यावरण पर अप्रत्यक्ष सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव दोनों दिखता हैं (चित्र-7)। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया हैं, इस समय, यह स्थापित करना विशेष रूप से मुश्किल हैं कि क्या पर्यावरण पर कोविड के प्रभाव को सकारात्मक या नकारात्मक के रूप में वर्गीकृत किया जाना चाहिए? तालाबंदी पर्यावरण की अस्थायी गुणवत्ता में सुधार कर सकता हैं लेकिन इससे अर्थव्यवस्था में भी बाधा आती हैं। कोविड-19 महामारी से मानवता पर भारी असर पड़ा हैं, और कोई नहीं प्रदूषण में इस तरह से कमी लाना चाहता था। एक छोटी अवधि के दौरान प्रदूषण अस्थायी रूप से कम हो सकता हैं, लेकिन यह शायद ही हमारे पर्यावरण की सफाई का एक स्थायी तरीका हैं। हमने जो परिवर्तन देखे हैं वे सभी अल्पकालिक और सतह-स्तर के हैं, और यदि हमारी दिनचर्या सामान्य हो जाती हैं, तो पूर्व-घटना के स्तर पर वापस आ जाएगी, जब तक कि हम इससे उभरने का उपयोग परिवर्तनकारी परिवर्तन के अवसर के रूप में न करें। इस बीच, विषाणु संकट अन्य पर्यावरणीय समस्याओं, जैसे कि मेडिकल कचरे का डिस्पोजल आदि को लाता हैं जो लंबे समय तक चल सकता हैं और इससे निपटने भी कठिनाई हैं।

अवसर:

यद्यपि महामारी की स्थिति मनुष्य के लिए नियंत्रण से बाहर हैं, लेकिन इसके सकारात्मक पक्ष ने हमें अपने जीवन यापन के तरीके पर पुनर्विचार करने का अवसर प्रदान करता हैं। तालाबंदी ने स्पष्ट रूप से दिखाया हैं कि, उत्सर्जन में भारी कटौती करके, अभी भी हमारी जलवायु को बचाना संभव हैं। आज की स्थिति प्रकृति और मानव जाति के लिए एक "रीसेट" हैं, जिससे हमें अंदर और आस-पास के विश्लेषण की संभावना मिलती हैं। कोविड-19 महामारी को कम करने के प्रयासों और तालाबंदी के

कारण प्रदूषण और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में महत्वपूर्ण कमी देखी जा रही हैं। यह प्रदूषकों के उत्सर्जन के स्रोतों में हमारी रोजमर्रा की गतिविधियों के योगदान की एक मजबूत पुष्टि हैं। दुनिया भर में तालाबंदी ने प्रकृति पर हमारे दबाव और प्रकृति के धैर्य को महसूस करने का एक अच्छा अवसर प्रदान किया हैं। तालाबंदी, जैवविविधता की रक्षा और जलवायु परिवर्तन को संबोधित करने के लिए व्यावहारिक अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं। जिस गति के साथ प्रदूषण में गिरावट आई हैं, उससे आशा जगती है कि हम जल्दी अपने पर्यावरण को बेहतर बना सकते हैं। यह नीति निर्माताओं और पर्यावरणविदों के लिए प्रदूषकों की कमी पर विभिन्न कारकों के प्रभाव का विश्लेषण करने के लिए फायदेमंद हैं ताकि भविष्य के बुनियादी ढाँचे और नीति को लागू किया जा सके तदनुसार इसे समायोजित करने की योजना बनाई जा सके। यह क्षण हमें दीर्घकालिक में अपने व्यवहार को बदलने के लिए प्रेरित करता हैं। यहां तक कि हमारे व्यक्तिगत व्यवहारों में छोटे बदलाव भी एक बड़ा बदलाव ला सकते हैं। व्यक्तिगत वाहनों के उपयोग को कम करना और बड़े पैमाने पर परिवहन सुविधाओं का उपयोग करना, पेड़ों, झाड़ियों और किसी भी पौधे को लगाना, प्लास्टिक और नष्ट नहीं होने योग्य कचरे को कम करने, पुनर्चक्रण और पुन: उपयोग करने योग्य पेय कंटेनरों के उपयोग जैसे कार्य सरल परिवर्तन हैं जो आप अपने हर दिन के जीवन में कर सकते हैं। जीवाश्म ईंधन के बजाय स्वच्छ नवीकरणीय ऊर्जा का ग्रहण, परिनियोजन और एकीकरण, औद्योगिक और घरेलू अपशिष्ट प्रबंधन इत्यादि से प्रदूषण को कम किया जा सकता हैं। सरकारों ने जिस तरह कोरोना विषाणु के समय पर लोगों को ये समझाया कि तालाबंदी किया जाना एक मात्र विकल्प हैं, उसी तरह प्रदूषण को कम करने की दिशा में भी रचनात्मक क़दम उठाने की आवश्यकता महसूस की जा रही है। हम पर्यावरण के मुद्दे और सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा और भू-तापीय दबाव जैसे नवीकरणीय स्रोत के विकास के लिए मजबूत नियम और विनियमन बनाने के लिए सरकार पर दबाव बना सकते हैं। "प्रदूषण स्रोतों का केवल सफल नियंत्रण एक स्वच्छ पर्यावरण दे सकता हैं"।

जो पुरुषार्थ नहीं करते उन्हें धन, मित्र, ऐश्वर्य, सुख, स्वास्थ्य, शांति और संतोष प्राप्त नहीं होते।

- वेदव्यास

परि-नगरीय क्षेत्रों हेतु उपयुक्त फल

राम रोशन शर्मा

खाद्य विज्ञान एवं फस्लोत्तर प्रौद्योगिकी संभाग
भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012

परि-नगरीय औद्यानिकी की परिकल्पना विकसित देशों में तो एक पुरानी अवधारणा है, परंतु हमारे देश में इस विषय पर चर्चा हाल ही के वर्षों में शुरू हुई है। इस परिकल्पना के अंतर्गत औद्यानिकी फसलों जैसे फलों, सब्जियों एवं आलंकृत किस्म के पौधों की बागवानी शहरों व कस्बों के नजदीकी क्षेत्रों में की जाती है। वैसे मिट्टी, जलवायु एवं अन्य कारकों के अनुरूप लगभग प्रत्येक औद्यानिक फसल को परि-नगरीय क्षेत्रों में उगाया जा सकता है परंतु हमें तुड़ाई उपरांत शीघ्र नष्ट होने वाली फसलों की खेती ही करनी चाहिए जिन्हें हम अन्य भागों में उगा तो सकते हैं परंतु उन्हें बेचने हेतु शीघ्र बाजार नहीं मिलता है। अतः बड़े स्तर पर परि-नगरीय औद्यानिकी अपनाने से उत्पादक व उपभोक्ता दोनों का अधिकाधिक भला होता है। उदाहरण स्वरूपः परि-नगरीय क्षेत्रों में उत्पादक तुड़ाई उपरांत शीघ्र नष्ट होने वाली फसलों को भी उगा सकते हैं क्योंकि इन्हें आसानी से बाजार मिल जाता है, जिससे उत्पादक को अन्य फसलों की अपेक्षा अधिकाधिक लाभ होता है। इसके साथ शहरी क्षेत्रों के उपभोक्ता को ताजी व पौष्टिक सामग्री मिल जाती है। इसके अतिरिक्त हमारे देश में अधिकतर फैक्टिरियां भी शहरों में ही हैं, उन्हें भी सामग्री लगातार मिलती रहती है। परि-नगरीय औद्यानिकी अपनाने से अनपढ़ महिलाओं व पढ़े-लिखे नौजवानों को रोजगार मिलता है जिससे लोगों का सामाजिक व आर्थिक विकास होता है।

विभिन्न औद्यानिकी फसलों में फलों का विशेष महत्व है क्योंकि इनमें पौषक तत्व व विटामिन प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं जो हमारी कई रोगों से रक्षा करते हैं। परि-नगरीय क्षेत्रों में वैसे तो मिट्टी, जलवायु व अन्य वाह्य कारकों के अनुसार कई फलदार फसलों को उगाया जा सकता है परंतु निम्नलिखित फल ऐसी बागवानी हेतु सर्वोचित हैं जिसकी बागवानी के बारे में संक्षिप्त ब्यौरा नीचे दिया जा रहा हैः

स्ट्राबेरी

स्ट्राबेरी एक ऐसी फलदार फसल है जो सबसे कम समय में फल देती है। आजकल स्ट्राबेरी की बागवानी का महत्व दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है और परि-नगरीय क्षेत्रों के लिए यह बहुत ही महत्वपूर्ण फल साबित हो सकती है क्योंकि देश के अन्य भागों में इसको किसान पैदा तो कर लेते हैं लेकिन उन्हें बाजार नहीं मिल पाते परंतु महानगरों के समीप रहने वाले किसानों को मार्केटिंग

की कोई समस्या नहीं होती है। मार्केटिंग की स्ट्राबेरी में महत्ता इसलिए भी अधिक है क्योंकि यह बहुत ही नाजुक फल है। यह एक शाकीय पौधा है जिसकी जड़ें बहुत ही छोटी एवं उथली (जमीन की उपरी सतह) होती हैं। अतः इसे पानी की बार-बार परंतु थोड़ी मात्रा में आवश्यकता होती है। वैसे तो स्ट्राबेरी की कई किस्में हैं लेकिन चांदलर, पजारो, फर्न एवं स्वीट चार्ली आदि किस्में इन क्षेत्रों हेतु उपयुक्त हैं। स्ट्राबेरी के पौधो का प्रवर्धन भूस्तारी द्वारा होता है जो पहाड़ों में ही पैदा होते हैं। पौधों की रोपाई अक्टूबर के अंत में 25 से 30 सेमी. की दूरी पर उंची क्यारियों में की जाती है। क्यारियां मनचाही आकार की हो सकती हैं परंतु उनकी उंचाई 15 सेमी. से अधिक नहीं होनी चाहिए। सर्दियों में यदि क्यारियों पर काली पॉलीथीन (700 गेज) का तम्बू लगा दें तो पौधों की बढ़वार अच्छी होती है।

स्ट्राबेरी के फल फरवरी में आना शुरू हो जाते हैं जो अप्रैल के शुरू तक खत्म हो जाते हैं। यदि फलों का संपर्क मिट्टी से बना रहे तो उनमें सड़न रोग की संभावना रहती है। अतः फलों के नीचे कोई पलवार (मल्च) जैसे सूखी घास, पुआल या पॉलीथीन आदि विछा दें। फलों को तोड़कर उन्हें विशेष प्रकार के प्लास्टिक के डिब्बों में पैक किया जाता है। ध्यान रहे कि 200-250 ग्राम फल ही प्रत्येक डिब्बे में पैक किए जाने चाहिए तथा उन्हें तुरंत बाजार में भेजने की व्यवस्था करनी चाहिए। स्ट्राबेरी को वैसे तो छोटे-मोटे बहुत रोग व कीट हानि पहुंचाते हैं परंतु कुछ पक्षी जैसे चिड़िया, मोर, तोता आदि सर्वाधिक हानि पहुंचाते हैं। इनसे बचने के लिए पौधों की क्यारियों के उपर नायलॉन का जाल लगाना ठीक रहता है।

पपीता

पपीता भी एक शाकीय पौध है। पपीते के कच्चे फल सब्जी एवं पके हुए ताजे फल खाने हेतु प्रयोग में लाए जाते हैं। कच्चे फलों के दूध से 'पपेन' भी तैयार किया जाता है। पपीते की वैसे तो अनेक किस्में विकसित की गई हैं लेकिन पूसा नन्हा, पूसा ड्वार्फ एवं पूसा डिलिशियस एवं को.-1 से को.-7 आदि किस्में किसानों में प्रचलित हैं। पपीते में नर व मादा फूल अलग-अलग पौधों पर आते हैं। प्रारंभिक अवस्था में यह पता लगाना कठिन होता है कि लगाए गए पौधों में से कौन सा नर होगा व कौन सा मादा। अतः प्रत्येक गड्ढ़े में 2-3 एकलिंगाश्रयी किस्में (पूसा ड्वार्फ, पूसा नन्हा आदि) के पौधे लगाएं और फूल आने पर नर पौधों को उखाड़ दें। परंतु परागण के लिए बाग में कम से कम 10 प्रतिशत नर पौधों की आवश्यकता होती है। ध्यान रहे कि नर पौधों के फूल, लंबी लटकी हुई शाखाओं के रूप में आते हैं। उभयलिंगाश्रयी किस्में (पूसा मजेस्टी, पूसा डिलिशियस आदि) का प्रत्येक गड्ढ़े में केवल एक पौध ही लगाएं।

पपीते के पौधों को 1.5 से 2.0 मीटर की दूरी पर लगाएं। पौधों को क्यारियों की मेड़ों पर भी लगाया जा सकता है। पौधों के समीप पानी के निकास का उचित प्रबंध होना चाहिए नहीं तो उनमें तना गलन व सड़न रोग लग जाता है। पौधों के तने के चारों ओर थोड़ी मिट्टी चढ़ाने से उन्हें इस रोग से बचाया जा सकता है। पपीते

के पौधे बहुत नाजुक होते हैं अतः जाड़ों में पाले से एवं गर्मी में लू से उनकी सुरक्षा बहुत ही आवश्यक है। पौधे लगाने के साल भर बाद ही फल लगना शुरू हो जाते हैं और एक बार लगाए गए पौधे से 2 से 3 साल तक फल लिए जा सकते हैं। पपेन तैयार करने के लिए 90-100 दिन के फलों पर तेज ब्लेड़ से 3-4 दिनों के अंतराल पर 4-5 चीरे दिए जाते हैं जिससे सफेद दूध निकलता है। इस दूध को एल्युमिनियम की ट्रे में इकट्ठा कर सुखाया जाता है। बाद में सूखे पाउड़र को सील बंद डिब्बों या प्लास्टिक की थैलियों में पैक किया जाता है।

फालसा

फालसा एक अद्भुत एवं सहिष्णु फल है। इसके फल आर्कषक जामुनी रंग व गुणों से भरपूर परंतु अत्यंत नाजुक होते हैं। इसके फल अधिकतर ताजे ही खाए जाते हैं परंतु फलों का जूस भी अत्यंत स्वादिष्ट होता है। अत्यंत नाजुक फल होने के कारण यह फल भी परि-नगरीय क्षेत्रों हेतु अति उपयुक्त है। इसकी कोई प्रचलित किस्म नहीं है। इसके बाग लगाने के लिए दिसंबर-जनवरी के महीने उपयुक्त हैं। बाग लगाने के लिए पौधे से पौधे की दूरी 2 से 3 मीटर रखी जानी चाहिए। क्योंकि पौधे में फल मुख्यतः नई पत्तियों के अग्रिम प्ररोहों में आते हैं अतः 'प्रूनिंग' का फालसे में खास महत्व है। प्रूनिंग (काट-छांट) फलों की तुड़ाई के बाद जुलाई-अगस्त में की जाती है। फल अत्यंत नाजुक होने के कारण उन्हें तोड़ने के बाद छोटी-छोटी टोकरियों में रखकर बाजार में भेजने की व्यवस्था करनी चाहिए।

अनन्नास

अनन्नास को भी भारत के कई शहरों के निकटवर्ती क्षेत्रों में लगाया जा सकता है। वैसे तो इसकी कई प्रजातियां हैं परंतु 'क्यू' व 'क्वीन' ही किसानों में अधिक प्रचलित हैं। परि-नगरीय क्षेत्रों में इसकी सघन बागवानी ही की जानी चाहिए। अतः पौधों को 25-30-60 सेमी. दूरी पर ही रोपण करें जिससे प्रति हेक्टेयर लगभग 60,000 पौधों लग सकते हैं, जिनसे 100 टन के लगभग फल प्राप्त हो सकते हैं। फलों को ताजा खाया जाता है या इन्हें तुरंत जैम, जैली, जूस आदि बनाने वाली फैक्टिरियों में भी भेजा जा सकता है।

वैसे तो अनन्नास की बागवानी में कोई खास समस्या नहीं होती परंतु कभी-कभी एक साथ लगाए पौधों में एक साथ फूल नहीं आते। इस समस्या के हल हेतु किसानों को पौधों में फूल आने से पहले रात में 8 बजे के बाद नेफ्थेलिन एसिटिक अम्ल (25 पीपीएम) या प्रति पौधा 2 ग्राम कैल्शियम कार्बाइड़ का प्रयोग करना चाहिए।

आंवला

आजकल आंवले की बाजार में काफी मांग हैं क्योंकि इसके फलों से मुरब्बा, अचार, तेल एवं स्वादिष्ट चूर्ण आदि कई मूल्यवर्धित उत्पाद बनाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त आंवला उन क्षेत्रों में अत्यधिक सफल है जहां

अन्य फल मिट्टी में अधिक लवण होने के कारण नहीं उग पाते। आंवले की उन्नत किस्मों में बनारसी, चक्कैया, कृष्णा, कंचन एन.ए.-7, एन.ए.-8 व एन.ए.-9 हैं जिन्हें 8 से 10 मीटर की दूरी पर लगाया जा सकता है। क्योंकि आंवले में स्वःनिषेचन की समस्या है अतः हमेशा उचित परागण हेतु बाग में 2-3 किस्में अवश्य लगाएं। बाग लगाने का उचित समय दिसंबर-जनवरी है, परंतु जुलाई-अगस्त में बाग लगा सकते हैं।

आंवले में वैसे तो कोई प्रमुख बीमारी व कीट नहीं है परंतु 'नेक्रोसिस' विकार बहुत हानि पहुंचाता है जिसमें फल अंदर से काले पड़ने के वाद सड़कर नीचे गिर जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए बोरेक्स (0.6 प्रतिशत) का छिड़काव लाभकारी रहता है।

अंगूर

अंगूर के फल भी अति नाजुक होते हैं तथा इसके पौधे अन्य फलों की अपेक्षा लवणों की अधिकता को कुछ हद तक सह लेते हैं। अतः यह फल भी परि-नगरीय क्षेत्रों हेतु उपयुक्त है। परलेट, ब्यूटी सीडलैस, पूसा सीडलैस, पूसा नवरंग एवं पूसा उर्वशी किस्मों को इन क्षेत्रों में लगाया जा सकता है।

अंगूर के प्रवर्धन का सबसे सरल एवं आसान तरीका है कटिंग (कलम द्वारा)। कलमों को (25-50 सेमी.) को जनवरी के महीने में काट-छांट से प्राप्त लकड़ी से तैयार किया जाता है। यही महीना अंगूर के बाग लगाने के लिए भी सर्वोत्तम है। बाग लगाने की दूरी मुख्यतः किस्म, मिट्टी के प्रकार एवं ट्रेनिंग (सधाई) की विधि पर निर्भर करती है। जैसे शीर्ष सधाई की विधि में 2 से 2 मीटर, टेलिफोन विधि में 2 से 3 मीटर व बॉबर या पंडाल विधि में 3 से 4 मीटर दूरी उचित रहती है। वैसे तो सधाई की विधियों का अपना-अपना महत्व है परंतु पंडाल विधि किसानों के हित में रहती है। फूल के बाद एवं पकने से पहले अंगूर में पानी साप्ताहिक अंतराल पर देना चाहिए। परंतु जैसे ही फलों में रंग आने लगे, सिंचाई तुरंत बंद कर देनी चाहिए। इस समय सिंचाई करने से फलों की मिठास एवं गुणवता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। फलों को मीठा व बीज रहित करने के लिए फूल आने के समय जिब्रेलिक एसिड (50 पीपीएम) का छिड़काव करें।

उत्तरी भारत में अंगूर को कोई खास कीट व बीमारी प्रभावित नहीं करती। परंतु चिड़िया इसकी सबसे बड़ी दुश्मन है। अतः फलों के पकने के समय उन्हें हरी मखमल की थैलियों से ढक देना चाहिए। वैसे तो अंगूर के फलों को ताजा ही खाया जाता है परंतु इससे किशमिश, मुनक्का, शरबत, मदिरा आदि बहुमूल्य पदार्थ बनाए जा सकते हैं।

कीवी फल

अन्य फलों की अपेक्षा कीवी फल हमारे देश के लिए एक नया फल है। परंतु इसकी बागवानी अन्य फलों की अपेक्षाकृत लाभप्रद होने के कारण यह फल भारत के कई पहाड़ी राज्यों में काफी प्रचलित हो रहा है और लगता है कि विशिष्ट गुणों के कारण यह आने वाले कुछ वर्षों में

यह फल अत्यंत लोकप्रिय हो जाएगा। कीवी फ्रूट एक पर्णपाती, बिना रोएं का चीकू जैसा दिखने वाला फल है।

कीवी के फल अन्य फलों की तुलना में काफी पौष्टिक व स्वादिष्ट होते हैं। फलों का खट्टा मीठा स्वाद लगभग हर किसी को आकर्षित करता है। कीवी के पके फल में लगभग सभी खनिज लवण पाए जाते हैं । विभिन्न प्रकार की विटामिन में, विटामिन 'सी' व विटामिन 'ए' की अच्छी मात्रा पाई जाती है। कीवी के फलों के रोयों को हटाकर अक्सर ताजा ही खाया जाता है।

हांलाकि कीवी शीतोष्ण जलवायु का फल है परंतु जलवायु की कई दशाओं में भी इसे सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। हल्के उपोष्ण एवं गर्म शीतोष्ण जलवायु वाले वे क्षेत्र, जिनकी समुद्र तल से उंचाई 900 से 1,800 मीटर तथा सर्दियों में 70 सेल्सियस तापमान 200 से 400 घंटों तक मिल सकता हो, वहां कीवी की बागवानी की जा सकती है। कीवी की विश्व प्रसिद्ध मादा किस्में हेवर्ड, एबॉट, एलीसन, ब्रूनो व मॉन्टी एवं नर किस्में तोमुरी, एलीसन व मटुआ हैं। विभिन्न किस्मों में हेवर्ड विश्व प्रसिद्ध किस्म है, जिसके अंतर्गत विश्व में कीवी का लगभग 90-95 प्रतिशत क्षेत्रफल आता है।

कीवी को कई विधियों द्वारा प्रवर्धित कर सकते हैं, परंतु कलमों द्वारा प्रवर्धन न केवल एक सस्ती व आसान विधि है अपितु सबसे उपयुक्त विधि भी है। प्रवर्धन हेतु तने की कई प्रकार की कलमों जैसे कोमल काष्ठ, अर्धपकी काष्ठ या सख्त काष्ठ कलमों को प्रयोग में लाया जाता है, परंतु सख्त काष्ठ तने की कलमें सबसे उपयुक्त पाई गई हैं।

कीवी की व्यावसायिक बागवानी हेतु चौड़े व थोड़े ढलुआ खेत अच्छे रहते हैं। बहुत ढलुआ खेत ठीक नहीं रहते क्योंकि सधाई हेतु 'टी टेलिस' ढांचा तैयार करने हेतु बहुत असुविधा होती है। बाग के रेखांकन हेतु तकनीकी विशेषज्ञ की सहायता लेना लाभदायी रहता है। कीवी हेतु रोपण दूरी कई बातों जैसे जलवायु, मिट्टी के प्रकार, किस्म-विशेष व सधाई की विधि आदि पर निर्भर करती है। उदाहरणतः हेवर्ड किस्म कम ओजस्वी है अतः रोपण दूरी कम (5 x 3 मीटर) रखी जाती है जबकि ओजस्वी किस्मों हेतु रोपण दूरी अधिक (6 x 4 मीटर) रखी जाती है।

कीवी फल एकलिंगाश्रयी होने के कारण, बाग लगाने से पहले नर व मादा किस्मों के चुनाव, नर एवं मादा पौधों का अनुपात एवं लगाने के तरीके पर गौर कर लें। साधारणतः नर व मादा में यह अनुपात 1:6, 1:8 और 1:9 रखा जाता है।

अनार

अनार एक सहिष्णु फल है जिसे विभिन्न प्रकार की जलवायु व मिट्टी की दशाओं में उगाया जा सकता है परंतु उपोष्ण एवं शुष्क जलवायु वाले क्षत्रों में उगाए जाने वाले फलों में अनार का विशिष्ट स्थान है। इन क्षेत्रों में पैदा होने वाले अनार आर्द्र एवं शीतोष्ण क्षेत्रों में पैदा होने वाले अनार से कई गुणा अच्छे होते हैं। आकर्षक स्वाद व ताजगी के कारण एवं विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में भली भांति अच्छी तरह फूलने व फलने की क्षमता के कारण भारत में इसकी बागवानी काफी लोकप्रिय हो रही है। यही कारण है कि इस फल के अंतर्गत क्षेत्रफल दिन-प्रतिदिन निरंतर बढ़ता जा रहा है।

अनार के फल काफी स्वास्थवर्धक होते हैं। अनार के बीज पर एक गूदादार आवरण होता है, जिसे एरिल कहते

हैं, यही इसका खाने योग्य हिस्सा होता है। अनार का एरिल कार्बोहाइड्रेटस, प्रोटीन व पोषक तत्वों एवं विटामिन सी का अच्छा स्रोत माना गया है। अनार के रस से स्कवैश, जैली व जूस आदि बहुमूल्य उत्पाद बनाए जा सकते हैं जोकि काफी स्वास्थ्यवर्धक एवं लोकप्रिय हैं।

अनार की बागवानी के लिए किसी विशेष मिट्टी की आवश्यकता नहीं होती है, क्योंकि इसकी बागवानी विभिन्न प्रकार की भूमि में की जा सकती है। कम उपजाऊ भूमि में भी अनार की बागवानी आसानी से की जा सकती है जिसमें साधारणतः दूसरे प्रकार के फल पैदा नहीं किए जा सकते। अम्लीय एवं कुछ क्षारीय मिट्टी में भी इसकी बागवानी की जा सकती है। अनार एक बहुत ही सहिष्णु फल है जिसे विभिन्न प्रकार की जलवायु की दशाओं में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है और अच्छी पैदावार भी देता है। यह मैदानी भागों से लेकर समुद्र की सतह से 1,800 मीटर तक की उंचाई में उगाया जा सकता है। हालांकि इसकी व्यावसायिक बागवानी उष्ण एवं उपोष्ण जलवायु में अच्छी होती है जहां पर सर्दियों में अधिक ठण्ड और गर्मियों में अधिक गर्मी पड़ती है।

भारत के विभिन्न राज्यों एवं क्षेत्रों में उगाई जाने वाली मुख्य व्यावसायिक किस्में हैं गनेश, कन्धारी, ढ़ोलका, अलन्दी, जी-137, मस्कट रेड, ज्योति, मृदुला, अर्कता एवं भगवा आदि।

अच्छी गुणवता के फल लेने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि पौधों को कलम या दाबा द्वारा ही तैयार किए जाएं। व्यावसायिक स्तर पर अनार के पौधे सख्त काष्ठ कलम द्वारा ही तैयार किए जाते हैं। कलमें एक से दो वर्ष पुरानी शाखाओं से बना ली जाती हैं। कलम की लंबाई 20-25 सेमी. ठीक रहती है। कलम को इंडोल ब्यूटारिक अम्ल के 1,000 पी.पी.एम. के घोल से उपचारित करने से जड़ों का अच्छा, शीघ्र व समान विकास होता है। उत्तरी भारत में बसंत ऋतु कलम लगाने का उपयुक्त समय होता है। अनार के पौधे आयताकार या षटभुजाकार विधि में 5 ग 5 मीटर की दूरी पर लगाए जाते हैं।

कम वर्षा वाले या सूखाग्रस्त क्षेत्रों में अनार के फलों का फटना एक गंभीर समस्या है। इस कारण कभी-कभी 60 से 70 प्रतिशत फल खराब हो जाते हैं। यह समस्या मुख्यतः अनार की किस्म एवं वातावरण पर निर्भर करती है। फल के फटने पर इसकी गुणवता काफी कम हो जाती है और फटे फलों पर फफूंदी भी आक्रमण कर देती हैं। इस समस्या से बचने के लिए बागों में नियमित रूप से हल्की सिंचाई करते रहना चाहिए एवं 5 प्रतिशत पीनोलिन 125 पी.पी.एम जिब्रैलिक अम्ल छिड़काव करें।

अनार की तितली,एक बहुत ही हानिकारक कीट है। यह फूलों एवं कोमल फलों पर अण्डे देती है। अंडों से इल्लियां निकलकर फल के अन्दर घुसकर फल के गूदे को खाती रहती हैं, जिससे फल खराब हो जाते हैं, और उनसे बदवू आने लगती है। ऐसे फलों की बाजार में कोई कीमत नहीं मिलती। इस कीट की रोकथाम हेतु फलों की मलमल या पॉलीथीन की थैलियों से थैलाबंदी करें या 0.2 प्रतिशत कार्बिल का छिड़काव पंद्रह दिन के अंतर पर फल बनने के पश्चात् करें।

अनार के फल, फूल आने के लगभग पांच-छः माह पश्चात् तुड़ाई हेतु तैयार हो जाते हैं। जब फलों का रंग पूर्णरूप से विकसित हो जाता है और फल के छिलके का रंग हल्के पीले या गुलाबी रंग का हो जाता है, तभी फलों को तोड़ना प्रारंभ करते हैं।

अनार में फल काफी संख्या में लगते हैं। अधिक संख्या में फल लेने पर उनका आकार छोटा हो जाता है, और फलों की गुणवता में भी कमी आती है। अतः विभिन्न बहारों में से केवल एक बहार के ही फल लेने चाहिए। शुरू के 4-5 वर्षों में अनार के पौधों से 20-25 फल/पौधा प्राप्त होते हैं। उपज धीरे-धीरे पौधों की आयु के साथ बढ़ती रहती है। पूर्णरूप से विकसित पौधे से प्रतिवर्ष 100 से 120 फल मिल जाते हैं।

इन फलदार फसलों के अतिरिक्त परि-नगरीय क्षेत्रों में मिट्टी, जलवायु एवं वातावरण के अन्य कारकों के अनुसार नींबू, अमरूद, बेर, बेल और जामुन आदि फलों की बागवानी की जा सकती है।

पादप जनित प्राकृतिक रंग - संभावनाएं एवं सीमाएं

अल्का जोशी, कुमार नन्द लाल, तिप्पेस्वामी बी, श्रुति सेठी एवं आर आर शर्मा

खाद्य विज्ञान एवं फसलोत्तर प्रौद्योगिकी संभाग
भा.कृ.अनु.प.- भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012

रंग, भोज्य की स्वीकार्यता का एक प्रमुख घटक है। कृत्रिम रंगों का स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव के चलते उपभोक्ताओं का रूझान प्राकृतिक रंगों की तरफ बढ़ रहा है। प्राकृतिक रंग किसी भी जीवित कोशा से निष्कर्षित किए जा सकते हैं, किंतु उद्यमियों एवं उपभोक्ताओं की प्रमुख पसंद पादप जनित वर्ण है, क्योंकि इनका निष्कर्षण अपेक्षाकृत आसान है तथा साधारणतः यह अल्पदोहित फसल उत्पादों से निष्कर्षित किए जाते हैं- जैसे चुकन्दर, काली गाजर इत्यादि। न केवल रंग, अपितु प्राकृतिक रंग भोज्य को कार्यात्मक गुणवत्ता तथा कभी-कभी सूक्ष्मजीवों के कुप्रभावों से भी बचाते हैं। किंतु निष्कर्षण एवं उनके भंडारण की तकनीकों के मानकीकरण का अभाव, कम उत्पादकता, अस्थायी स्वभाव, प्राकृतिक रंगों के बड़े स्तर पर उपयोग की प्रमुख बाधाएं हैं।

प्रस्तावना

जीवित कोशा से निष्कर्षित रंगों को प्राकृतिक रंगों की संज्ञा दी जाती है। मुख्यतः ये अपने संघनित स्रोतों से निष्कर्षित किए जाते हैं। जैसे कद्दू को कैरेटेनॉयड्स, सिट्रस के छिलकों को फ्लेवेनॉयड्स, काली गाजर को एन्थोसायनिन, चुकन्दर को बिटालेन्स एवं हरी पत्तेदार सब्जियां को क्लोरोफिल निष्कर्षण हेतु इस्तेमाल किया जाता है। केसर को छोड़कर, अन्य सभी कम मूल्य वाली औद्यानिक फसलें हैं या खाद्य उद्योग का अवशिष्ट है। रंगों के साथ कई अन्य कार्यात्मक लाभों को देखते हुए प्राकृतिक रंगों को बायोफंक्सनल एडिटिव्स कहना भी अतिश्योक्ति नहीं होगी। इनके बढ़ते हुए लाभों को देखते हुए यूरोपीयन यूनियन ने 43 प्राकृतिक रंगों को तथा यू.एस. ने 30 प्राकृतिक रंगों के खाद्य उपयोग को सहमति दी है। प्राकृतिक रंगों की मांग को देखते हुए एक अध्ययन के अनुसार वर्ष 2025 तक प्राकृतिक रंगों का वैश्विक बाजार 2.75 बिलियन यू.एस. डॉलर तक पहंच जाएगा।

प्राकृतिक रंगों का वर्गीकरण

प्राकृतिक रंगों को इनके उपयोग के आधार पर तीन भागों में वर्गीकृत कर सकते हैं।

एक प्राकृतिक रंग वे होते हैं जो काफी समय से उपयोग होते आ रहे हैं किंतु वैज्ञानिक तथ्यों के आभाव के कारण इन्हें ग्रास स्तर प्राप्त नहीं हुआ है। जैसे बोगनवेलिया से मिलने वाला गुलाबी रंग (बिटालेन्स)। कुछ रंग प्राकृतिक स्रोतों से संश्लेषित किए जाते हैं, बिना किसी वाह्य रसायन की मदद से । जैसे केरेमल जो चीनी को उच्च ताप पर गर्म करने से प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त यूरोपियीन यूनियन द्वारा मान्य वर्ण जिन्हें विशिष्टम् कोड प्रदान किया जाता है तथा जिनका अन्य उत्पादों में किस मात्रा तक उपयोग, उपयोग की अधिकतम मात्रा का निर्धारण किया जा चुका है। न केवल रंग अपितु स्रोत से निष्कर्षण के तरीकों को भी यूरोपीयन युनियन द्वारा स्वीकृति मिलना अनिवार्य है। जैसे चुकन्दर एवं अपुन्सिया फाइकस इन्डिका से मिलने वाले बिटालेन्स को म162 कोड तब ही प्राप्त होता है, जब यह फलों एवं सब्जियों से भैतिक तरीकों से संश्लेषित किया जाता है। इसी प्रकार काली गाजर से प्राप्त एन्थोसायनिन को ई163 कोड प्राप्त है, जिसे बिटालेन्स के साथ मिलाकर प्रयोग करना भी स्वीकार्य है।

घुलनशीलता के आधार पर भी प्राकृतिक रंग दो तरह के होते हैं - पानी में घुलनशील एन्थोसायनिन्स, बिटालेन्स, फ्लेवोनॉयड्स इत्यादि तथा वसा में घुनलशील केरोटीनॉयड्स, क्लोरोफिल एवं लाइकोपीन्स इत्यादि।

प्राकृतिक एवं कृत्रिम रंगों की तुलना

कृत्रिम रंगों के कई कुप्रभावों को देखते हुए खाद्य प्रसंस्करण में प्राकृतिक रंगों की ओर रूझान बढ़ा हैं तथापि कृत्रिम रंग की कम लागत, सरल भण्डारण, पी. एच., प्रकाश, ऑक्सीजन की विभिन्न अवस्थाओं पर इनका स्थायित्व, वसा, पानी में घुलनशीलता एवं तापमान के प्रति प्राकृतिक रंगों से अधिक होने के कारण, ये आज भी प्राकृतिक रंगों के द्वारा पूर्णतः विस्थापित नहीं हो पाए हैं। अत्यंत सीमाओं के बावजूद भी प्राकृतिक रंगों को इस्तेमाल करने के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं।

- यह उत्पाद को प्राकृतिक आभा प्रदान करते हैं।
- कई प्राकृतिक रंग (जैसे बिटालेन्स) प्रतिसूक्ष्मजीवी प्रभाव भी दिखते हैं।
- कई प्राकृतिक रंग जैसे लाइकोपिन्स एक प्रबल कार्यात्मक अवयव है।
- कुछ प्राकृतिक रंग जैसे बिटालेन्स एवं एन्थोसायनिन्स, एल्फा ग्लूकोसिडेज संक्रियता भी दिखाते हैं जो टाइप-2 मधुमेह के रोगियों के लिए लाभप्रद हैं।
- यह वातावरण हितैषी भी है।
- यह मुख्यतः कम मूल्य वाली अल्पदोहित फसल उत्पाद या खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों के अवशिष्ट से निष्कर्षित किए जाते हैं।
- यह कृत्रिम रंगों की अपेक्षा अधिक मात्रा में उपयोग करने पर परिलक्षित दुष्प्रभावों से मुक्त होते हैं।
- प्राकृतिक रंगों के स्रोत
- कैरेटेनॉयड्स (एल्फा एवं बीटा) प्राकृतिक रंगों की सर्वोत्तम स्रोत हैं जो कि कद्दू, गाजर, खुबानी, आड़ू एवं आम में पाया जाता है।
- लाइकोपीन्स टमाटर, लाल शिमला मिर्च, प्याज एवं तरबूज में पाया जाता है।
- ल्यूटीन नामक प्राकृतिक वर्ण गेंदे एवं हरी पत्तेदार सब्जियों में मिलता है जो नेत्रों के लिए वरदान तुल्य है।
- क्युरसिटिन नामक वर्ण प्याज, हरी मटर के छिलका, सेब एवं ब्रोकली की पत्तियों से निकाला जाता है।
- क्लोरोफिल (हरित लवक) पत्तियों के हरे भागों में पाया जाता है तथा मुख्यतया हरी पत्तेदार सब्जियों एवं शहतूत की पत्तियों से निष्कर्षित किया जाता है।
- बिटालेन्स मुख्यतः चुकन्दर से निकाला जाता है।
- काली गाजर एवं काले अंगूर एन्थोसायनिन की प्रबल स्रोत हैं।

प्राकृतिक वर्णों का उपयोग

इनके उपयोग से भोज्य की कार्यात्मक गुणवत्ता बढ़ती है। एक प्राकृतिक रंग की भाँति चुकन्दर के रंग (बिटासायनिन) को कई पेय, दुग्ध उत्पाद एवं बेकरी उत्पादों में इस्तेमाल किया जा चुका है। हल्दी के रंग (करक्यूमिनॉयड्स) से रंजित नारियल तथा अनन्नास एवं सेब की फाँकों की तकनीकी का मानकीकरण कई अनुसंधान संस्थानों द्वारा किया जा चुका है। भा.कृ.अनु.प.-भ.कृ.अनु. संस्थान ने भी कई प्राकृतिक वर्णों से रंजित नवोन्मेसी स्थायी उत्पादों को उन्नत किया है, जिसमें एन्थोसायनिन्स से रंजित आंवला कैण्डी (जो पूसा न्यूट्रा कैण्डी के नाम से विख्यात है), प्रमुख है। इसके अतिरिक्त बिटालेन्स युक्त पपीते की कैण्डी, एन्थोसयानिन्स एवं बिटालेन्स युक्त आलू के चिप्स प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त संस्थान द्वारा शिमला मिर्च से रंजित लाल ब्रेड भी विकसित की जा चुकी है।

निष्कर्षण तकनीकें

प्राकृतिक रंगों के निष्कर्षण की कई परंपरागत एवं आधुनिक तकनीकें प्रयोग की जाती है, जिसमे से कुछ निम्नवत हैं।

विलायक निष्कर्षण

किसी भी विलेय को दो परस्पर अघुलनशील विलायको में पृथक्करण करने का तरीका विलायक निष्कर्षण कहलाता है क्योंकि विलेय की आपेक्षिक घुलनशीलता दोनों विलायकों में भिन्न-भिन्न होती है। विलेय के स्वभाव अर्थात 'घुलनशीलता एवं ध्रुवता के अनुसार

विलायक का चयन किया जाता है । मेथेनॉल, एथेनॉल, एसीटोन, कार्बनिक एवं अकार्बनिक अम्लों द्वारा अम्लीकृत किया गया विलायक जैसे जल एवं एल्कोहल इत्यादि।

कई विलायकों का बीटालेन्स, एन्थोसायनिन, फिनोल्स के पृथककरण एवं निष्कर्षण हेतु शोध कार्य किया जा रहा है। जैसे मेथेनॉल, एन्थोसायनिन के निष्कर्षण में एथेनॉल एवं पानी की अपेक्षा 20 तथा 73 प्रतिशत अधिक एन्थोसायनिन को निष्कर्षित करता है। इसी श्रृंखला में सिट्रिक अम्ल के साथ अम्लीकृत मेथेनॉल, एन्थोसायनिन के निष्कर्षण में जबकि एस्कोर्बिक अम्ल से अम्लीकृत मेथेनॉल को बिटालेन्स निष्कर्षण के लिए बेहतर पाया गया है।

उच्च हाइड्रोस्टेटिक दबाव पद्धति

इस तकनीक में कोशा पर अत्यंत उच्च दबाव 500 से 1000 मेगापास्कल पल्स के रूप में लगाया जाता है। इस तरह क्रमवार दबाव के बढ़ने एवं कम होने से कोशा की सतह में सूक्ष्म छिद्र बन जाते हैं। फलस्वरूप कोशा की रिसाव क्षमता बढ़ जाती है एवं निष्कर्षण में सहजता प्राप्त होती है। विलायकों को परिवर्तित कर हम उच्च दबाव तकनीकी द्वारा पानी में घुलनशील एवं अघुलनशील दोनों प्रकार के वर्णों को निष्कर्षित कर सकते हैं। जैसे 75 प्रतिशत एथेनॉल को उपयोग कर टमाटर उद्योग के अवशिष्ट से 92 प्रतिशत लाइकोपीन को 500 मेगापास्कल के उच्च हाइड्रोस्टेटिक दबाव तकनीकी द्वारा निष्कर्षित किया जाता है। इसी प्रकार 443 मेगापास्कल दबाव द्वारा 63 प्रतिशत एथेनॉल प्रयोग करके ब्लूबेरी से एन्थोसायनिन निष्कर्षण की तकनीकी को भी मानकीकृत किया जा चुका है।

पल्स इलेक्ट्रिक फील्ड (पी.ई.एफ)

लघु किंतु उच्च वोल्टेज की 10 से 40 किलो वाट प्रति सेंटीमीटर विद्युत पल्स को कोशा एवं उत्तकों की रिसाव क्षमता को बढ़ाने में कारगर पाया गया है। क्योंकि यहां भी पल्स के रूप में लगने वाली विद्युत क्षेत्र, कोशा भित्ती में 'कैविटेशन दबाव' प्रत्यारोपित करता है। कैविटेशन का अर्थ है दबाव का कोशा भित्ती में पल्स के रूप में क्रमशः आरोपित होना। जिससे अपेक्षाकृत अधिक कोशा द्रव्य का निष्कर्षण हो पाता है। क्योंकि क्रमशः दबाव के लगने एवं हटने से कोशा भित्ती की रिसाव क्षमता में बढ़ोतरी होती है। उदाहरण के लिए चुकंदर में पल्स इलेक्ट्रिक फील्ड के द्वारा 4.38 किलोवाट प्रति सेंटीमीटर पल्स दर से बिटालेन्स की अपेक्षाकृत अधिक मात्रा को निष्कर्षित किया जा सकता है।

अल्ट्रासाउंड ऊर्जा सह निष्कर्षण

इस प्रक्रिया में लगभग 20 किलो हर्टज की आवृत्ति की अल्ट्रासाउंड ऊर्जा का प्रयोग महत्वपूर्ण अवयवों को उत्पाद में से निष्कर्षित करने के लिए उपयोग की जाती है। यहां अल्ट्रासाउंड ऊर्जा के द्वारा स्थानीय दबाव उत्पन्न होता है, जिससे पादप उत्तक विघटित होते हैं तथा अंतरा कोशिकीय तत्वों के निष्कर्षण में वर्धन प्राप्त होता है।

उत्प्रेरक सह निष्कर्षण

दृढ़ एवं कम रस वाले उत्पाद जैसे फलों के छिलके, गाजर, जूस निष्कर्षित भाग (पोमेस) के लिए कोशा भित्ती विघटनकारी उत्प्रेरक प्रयोग किए जाते है। जैसे सैल्यूलोज़, हेमी सैल्यूजोज़, ऐरेबेन्स, जाइलेमेज़ इत्यादि। बाजार में 'विस्कोजाइम' नामक उत्प्रेरक उपलब्ध है, जो कई कोशा भित्ती विघटनकारी उत्प्रेरकों का मिश्रण होता है। जैसे काली गाजर से एंथोसाइनिन के निष्कर्षण की प्रक्रिया का मानकीकरण 'विस्कोजाइम' उत्प्रेरक द्वारा किया जा चुका है। उत्प्रेरक की मदद से निष्कर्षित विलेय (वर्ण एवं कार्यात्मक उत्पाद) की प्राप्ति तो बढ़ती है परंतु उत्प्रेरक की उपयोगिता/सक्रियता पी.एच., तापमान पर निर्भरता तथा उच्च लागत इसे पारंपरिक निष्कर्षण तकनीकों के स्थान पर प्रयुक्त किए जाने में प्रमुख बाधा है। जिसका मानकीकरण वर्ण एवं स्रोत के अनुसार करना पड़ता है।

प्राकृतिक रंगों की सीमाएं

- कच्चे सामग्री से इनका निष्कर्षण
- कृत्रिम रंगों से उच्च लागत सामग्री
- कच्चे माल की मौसम पर निर्भरता
- निष्कर्षण तकनीकों के ज्ञान का अभाव
- पी. एच., तापमान, ऑक्सीजन, प्रकाश के प्रति

संवेदनशीलता

- भण्डारण के लिए उपयुक्त पैकजिंग एवं अवस्थाओं पर अपेक्षाकृत कम जानकारी का उपलब्ध होना

निष्कर्ष

जैसा कि उपर्युक्त से विदित है कि केसर के अतिरिक्त लगभग सभी प्राकृतिक रंग कम मूल्य वाली अल्पदोहित उद्यानिकी फसलों या खाद्य उद्यम से जनित अवशिष्ट से संश्लेषित किए जाते हैं इसीलिए इनकी निष्कर्षण एवं भण्डारण की उच्च लागत को कृत्रिम रंगों के समतुल्य समझा जा सकता है। यहाँ आवश्यकता है कि विभिन्न भौतिक एवं रासायनिक प्रसंस्करण उपक्रम में प्राकृतिक रंग की स्थायित्व की पूर्ण जानकारी होना जिससे कि इनके स्वभाव के अनुसार इनसे रंजित हो सकने वाले उत्पाद का निर्धारण किया जा सके। विभिन्न भौतिक एवं रासायनिक वातावरण में स्थिरता के अध्ययन द्वारा एवं सह वर्ण प्रक्रिया (कोपिगमेंटेशन) के द्वारा प्राकृतिक रंगों को स्थाई बनाकर उनके उपयोग की संभावना में यथासंभव विस्तार किया जा सकता है। अध्ययन से संबद्ध अन्य महत्वपूर्ण आंकड़े उद्यमियों को सरलता से उपलब्ध कराना भी आवश्यक है ताकि प्राकृतिक रंगों को न केवल रंग की भांति अपितु बायो फंक्शन अवयव के रूप में सफलतापूर्वक स्थापित किया जा सके। जिससे उपभोक्ता इनसे सहजता से लाभान्वित हो सके।

हिंदी उन सभी गुणों से अलंकृत है जिनके बल पर वह विश्व की साहित्यिक भाषाओं की अगली श्रेणी में समासीन हो सकती है।

- राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त

फल के आने से वृक्ष झुक जाते हैं, वर्षा के समय बादल झुक जाते हैं, संपत्ति के समय सज्जन भी नम्र होते हैं। परोपकारियों का स्वभाव ही ऐसा है।

- तुलसीदास

राजभाषा खंड...

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
राजभाषा प्रगति रिपोर्ट (2020-21)

देश के प्रसिद्ध कृषि अनुसंधानों में भा.कृ.अनु.सं. का नाम अग्रणी रहा है। नवीन अनुसंधानों एवं तकनीकियों के विकास का जनक यह संस्थान दिन प्रतिदिन प्रगति के नए आयाम छू रहा है। देश को खाद्यान्नों के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाने वाली हरित क्रांति का जनक भी यही संस्थान है। कृषि क्षेत्र के साथ राजभाषा के प्रचार-प्रसार हेतु किए गए प्रयासों की दृष्टि से भी संस्थान निरंतर ही प्रगतिशील है। उपलब्धियों की दृष्टि से वर्ष 2020-21 संस्थान के लिए गौरवपूर्ण रहा। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की तरफ से संस्थान को बड़े कार्यालय वर्ग में वर्ष 2019-20 राजर्षि टंडन का प्रथम पुरस्कार देकर सम्मानित किया गया। संस्थान में राजभाषा की प्रगति हेतु किए जा रहे अन्य प्रयास व उपलब्धियां निम्नवत रही-

- संस्थान में राजभाषा के प्रगामी प्रयोग की स्थिति की मॉनीटरिंग के लिए गठित राजभाषा निरीक्षण समिति ने संभागों/निदेशक कार्यालय के अनुभागों का निरीक्षण किया साथ ही कोविड-19 के चलते क्षेत्रीय केंद्रों का निरीक्षण ऑनलाइन ढंग से किया गया तथा संबंधित निरीक्षित संभाग/अनुभाग/क्षे. कें. को निरीक्षण रिपोर्टें भेजी गई। निरीक्षण के उपरांत संबंधित संभागों/अनुभागों/क्षेत्रीय केंद्रों पर हिंदी की वास्तविक प्रगति को वांछित गति प्राप्त हुई।
- संस्थान में राजभाषा विभाग के नियमानुसार प्रत्येक तिमाही में कार्यशालाओं का आयोजन किया जाता है। इस वर्ष कोविड-19 महामारी के चलते सभी कार्यशालाएं ऑनलाइन माध्यम से आयोजित की गई जिससे संस्थान के समस्त अधिकारी/कर्मचारी लाभान्वित हुए।
- राजभाषा कार्यान्वयन को गति प्रदान करने और अधिकारियों/कर्मचारियों में हिंदी में कार्य करने के प्रति जागरुकता का सृजन करने के लिए हिंदी चेतना मास के दौरान कुल 7 प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया जिनमें प्रमुख थी: काव्य-पाठ, टिप्पण एवं मसौदा लेखन, कम्प्यूटर पर हिंदी टंकण, आशु-भाषण, प्रश्नोत्तरी, वाद विवाद। उक्त प्रतियोगिताओं में सभी वर्गों के अधिकारियों/कर्मचारियों ने बढ़-चढ़कर भाग लिया। इसके अतिरिक्त कुशल सहायी कर्मचारियों तथा दैनिक वेतनभोगी कर्मचारियों के लिए अलग से सामान्य ज्ञान-प्रतियोगिता भी आयोजित की गई।
- प्रत्येक वर्ष की भांति संस्थान के मेला ग्राउंड में 'कृषि उन्नति मेला' आयोजित किया गया। इस अवसर पर मुख्य पंडाल के सभी चित्रों के शीर्षक, ग्राफ, हिस्टोग्राम आदि हिंदी में प्रदर्शित किए गए। मल्टी मीडिया के माध्यम से कृषि संबंधी जानकारी आकर्षक ढंग से प्रस्तुत की गई तथा किसानों, छात्रों व अन्य आगंतुकों को कृषि साहित्य हिंदी में उपलब्ध कराया गया।
- संस्थान द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'पूसा सुरभि' की मांग देश के किसान व आमजन के बीच बेहद बढ़ी है इसका उदाहरण समय-समय पर उनसे मिलने वाला फीडबैक और उनके द्वारा पत्रिका की मांग किया जाना है। पूसा सुरभि पत्रिका को उत्कृष्ट कृषि पत्रिका के लिए भा.कृ.अनु.प. द्वारा अनेक बार गणेश शंकर विद्यार्थी पुरस्कार मिल चुका है। साथ ही नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (उत्तरी दिल्ली) द्वारा भी इसको पुरस्कृत

किया गया है। राजभाषा विभाग के निर्देशानुसार पत्रिका के यूनिकोड (मगल फोंट) में वर्ष में दो अंक प्रकाशित किए जा रहे हैं।

- संस्थान में हिंदी पुस्तकों की खरीद के लिए एक समिति बनाई गई है जो पुस्तकालय के लिए हिंदी पुस्तकें खरीदने की सिफारिश करती है तथा पुस्तकालय में प्रत्येक वर्ष राजभाषा विभाग द्वारा निर्धारित लक्ष्य के अनुसार पुस्तकें खरीदने का प्रयास किया जा रहा है। संस्थान के पुस्तकालय में हिंदी में उपलब्ध सभी प्रकाशनों की सूची संस्थान की वेबसाइट पर उपलब्ध कराई गई है।
- संस्थान के जिन अधिकारियों और कर्मचारियों को हिंदी में प्रवीणता प्राप्त है उन्हें निदेशक महोदय द्वारा राजभाषा नियम 8(4) के तहत अपना शत-प्रतिशत प्रशासनिक काम हिंदी में करने के लिए प्रतिवर्ष व्यक्तिश: आदेश जारी किए जा रहे हैं। इसके अलावा संस्थान के सभी संभागों/अनुभागों को अपना शत-प्रतिशत सरकारी काम हिंदी में करने के लिए विनिर्दिष्ट किया गया है।
- संस्थान को प्राप्त होने वाले सभी हिंदी पत्रों के उत्तर अनिवार्यत: हिंदी में दिए जा रहे हैं, साथ ही 'क' और 'ख' क्षेत्रों में स्थित सरकारी कार्यालयों के साथ अब लगभग 90 प्रतिशत से अधिक पत्र-व्यवहार हिंदी में किया जा रहा है। इन दोनों क्षेत्रों में स्थित कार्यालयों से प्राप्त अधिकांश अंग्रेजी पत्रों के उत्तर भी हिंदी में दिए जा रहे हैं। मूल पत्राचार अधिकाधिक हिंदी में करने को बढ़ावा देने के लिए संस्थान के सभी संभागों व केंद्रों के बीच हिंदी व्यवहार प्रतियोगिता चलाई जा रही है जिसमें वर्षभर सबसे अधिक पत्राचार हिंदी में करने वाले संभाग/केंद्र को पुरस्कार स्वरूप प्रशस्ति पत्र व शील्ड प्रदान की जाती है।
- संस्थान में फाइलों पर हिंदी में टिप्पणियां लिखने में भी बहुत प्रगति हुई है, सेवा-पुस्तिकाओं व सेवा संबंधी अन्य अभिलेखों में अब लगभग सभी प्रविष्टियां हिंदी में की जा रही हैं और राजभाषा अधिनियम की धारा 3(3) का कड़ाई से अनुपालन किया जा रहा है। संस्थान में हिंदी को दैनिक प्रशासन कार्यों में बढ़ावा देने के उद्देश्य से फाइल कवर पर ही हिंदी-अंग्रेजी की प्रासंगिक टिप्पणियां प्रकाशित की गई हैं।
- संस्थान के अधिकारियों तथा कर्मचारियों के हिंदी शब्द ज्ञान को बढ़ाने के उद्देश्य से निदेशालय में स्थापित बोर्ड पर अंग्रेजी/हिंदी शब्द प्रदर्शित किया जा रहा है।
- राजभाषा विभाग के आदेशानुसार संस्थान के सभी कंप्यूटरों में हिंदी में यूनिकोड में काम करने की सुविधा उपलब्ध कराई गई है।
- संस्थान के सभी संभागों/क्षेत्रीय केंद्रों में राजभाषा कार्यान्वयन उप-समिति गठित है जिनकी नियमित रूप से बैठकें आयोजित की जा रही हैं। संस्थान के हिंदी अनुभाग द्वारा इसकी निगरानी की जाती है।
- संस्थान, राजभाषा विभाग द्वारा गठित की गई नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (उत्तरी दिल्ली) का भी सदस्य है। उक्त समिति की बैठकों में नगर में स्थित केंद्रीय सरकार के सदस्य कार्यालयों/उपक्रमों आदि में राजभाषा हिंदी में निष्पादित कामकाज/गतिविधियों की समीक्षा की जाती है। राजभाषा विभाग के आदेशानुसार समिति की बैठकों में संस्थान से निदेशक द्वारा सक्रिय रूप से भाग लिया जाता है।
- संभागों/अनुभागों/क्षेत्रीय केंद्रों में हिंदी की प्रगति को वांछित गति प्रदान करने, राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक में लिए गए निर्णयों को क्रियान्वित करने तथा संभाग एवं हिंदी अनुभाग के बीच संपर्क-सूत्र के रूप में कार्य करने के उद्देश्य से प्रत्येक संभाग/केंद्र में राजभाषा नोडल अधिकारी नामित किए गए हैं। इसमें सर्वश्रेष्ठ राजभाषा नोडल अधिकारी के लिए एक पुरस्कार योजना भी आरंभ की गई है। जिसके अंतर्गत

5000/-रु. का नकद पुरस्कार प्रदान किया जाता है।

- संस्थान के अधिकारी व कर्मचारी ने देश की विभिन्न हिंदी संस्थाओं व भा.कृ.अनु.प. के संस्थानों द्वारा आयोजित हिंदी वैज्ञानिक संगोष्ठियों, कार्यशालाओं, सम्मेलनों आदि में भाग लेते हैं।
- उपर्युक्त सभी कार्य संस्थान की राजभाषा कार्यान्वयन समिति की देखरेख में किए जाते हैं जिसकी प्रत्येक तीन माह में बैठक आयोजित होती है। बैठक में राजभाषा कार्यान्वयन में हुई प्रगति की समीक्षा की जाती है और हिंदी के उत्तरोत्तर कार्यान्वयन के लिए निर्णय लिए जाते हैं। इन बैठकों में प्रत्येक संभाग/इकाई द्वारा हिंदी की प्रगति के संबंध में किए गए अभिनव प्रयोग की भी समीक्षा की जाती है। गत वर्ष 2020 से कोविड-19 संक्रमण के कारण यह बैठक ऑनलाइन ज़ूम ऐप के माध्यम से आयोजित की जा रही है।

हिंदी कार्यशालाएं

एक दिवसीय हिंदी कार्यशाला का आयोजन

संस्थान में दिनांक 23 फरवरी, 2021 को ऑनलाइन ज़ूम ऐप के माध्यम से एक दिवसीय हिंदी कार्यशाला आयोजित की गई। कार्यशाला में व्याख्यान देने हेतु डॉ. विजयनारायण तिवारी, पूर्व संयुक्त निदेशक (राजभाषा), केंद्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान, लखनऊ, उ.प्र. को आमंत्रित किया गया था। जिसमें संस्थान के समस्त संभागों व क्षेत्रीय केंद्रों के सभी राजभाषा नोडल अधिकारियों के लिए कार्यशाला के ''राजभाषा प्रबंधन'' विषय पर व्याख्यान प्रस्तुत किया। जिसमें उन्होंने बताया कि किस प्रकार से किसी भी देश की भाषा उसके विकास में अहम भूमिका निभाती है। लिपि भाषा की आत्मा होती है। इसी कारण हिंदी की लिपि देवनागरी है। भाषा विज्ञान की शब्दावली में यह 'अक्षरात्मक' लिपि कहलाती है। यह विश्व में प्रचलित सभी लिपियों की अपेक्षा अधिक पूर्णतर है। इसके लिखित और उच्चरित रूप में कोई अंतर नहीं पड़ता है। प्रत्येक ध्वनि संकेत यथावत लिखा जाता है।

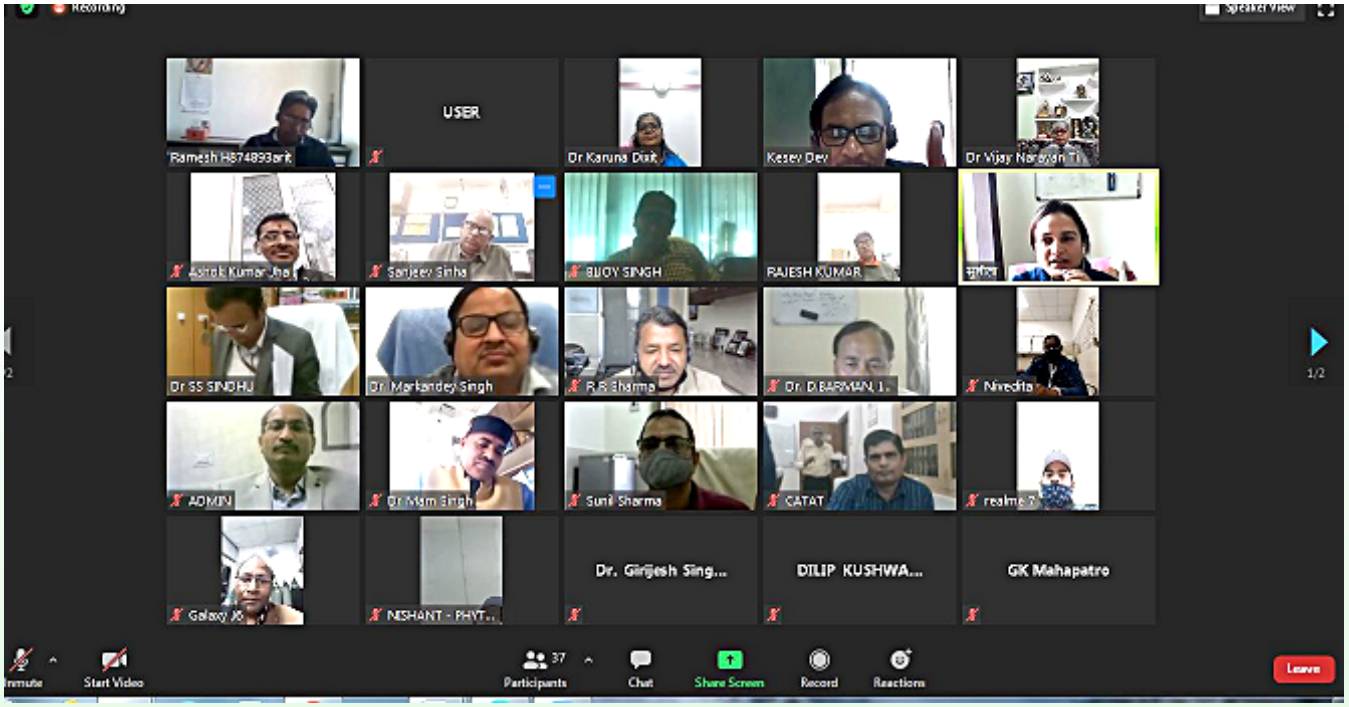

इस कारण से हिंदी भाषा को देवनागरी लिपि में लिखा गया। उन्होंने राजभाषा के संवैधानिक प्रावधानों के बारे में भी विस्तार से चर्चा की। साथ ही उन्होंने गूगल डॉक्स के माध्यम से वॉयस टाईपिंग एवं गूगल ट्रांसलेट ऐप के माध्यम से अनुवाद करने संबंधी जानकारी दी व इसका अभ्यास भी कराया। अतिथि वक्ता ने कार्यशाला में प्रतिभागियों द्वारा पूछे गए प्रश्नों का समाधान भी किया। इस कार्यशाला का उद्देश्य संस्थान में कार्यरत सभी राजभाषा नोडल अधिकारियों को राजभाषा प्रबंधन में आने वाली कठिनाइयों को दूर करने का प्रयास करना था।

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केंद्र, पुणे

स्वच्छता पखवाड़ा (दिनांक 16 से 31 दिसंबर, 2020)

दिनांक 16 से 31 दिसंबर, 2020) तक स्वच्छता पखवाड़ा के अंतर्गत दिनांक 30.12.2020 को अपराह्न

में ''स्वच्छ खेती हरित खेती (Clean Agriculture Green Agriculture) नामक एक अंतरसंस्थानीय वेबीनार का आयोजन पुणे स्थित भा.कृ.अनु.प. के अन्य संस्थानों (कृषि प्राद्योगिकी शोध संस्थान, जोन VIII: पुष्प विज्ञान अनुसंधान निदेशालय: प्याज एवं लहसुन अनुसंधान निदेशालय और राष्ट्रीय अंगूर अनुसंधान केंद्र) के साथ मिल कर ज़ूम प्लेटफार्म पर किया। वेबीनार का उद्देश्य सभी भागीदारों में कृषि के क्षेत्र में साफ-सफाई के महत्व के प्रति जागरूकता बढ़ाना था। इस कार्यक्रम में भाग लेने वाले संस्थानों के कर्मचारियों के अतिरिक्त अन्य भागीदारों ने भाग लिया, जिनकी कुल संख्या 40 थी। इस कार्यक्रम में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली के सेवा निवृत वैज्ञानिक डॉ.आर.डी. गौतम ने भी कार्यक्रम में भाग लेकर प्रतिभागियों का मार्ग दर्शन किया। इस कार्यक्रम का आयोजन पूर्णतया: हिंदी में किया गया था। कार्यक्रम की सफलता के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली के डॉ. सी. विश्वनाथन अध्यक्ष पादप कार्यिकी विभाग और डॉ. आर. आर. बर्मन, प्रधान वैज्ञानिक, कृषि विस्तार विभाग द्वारा ज़ूम प्लेटफॉर्म प्रदान कर के महत्व पूर्ण योगदान दिया। कार्यक्रम का समापन डॉ. राज वर्मा, प्रधान वैज्ञानिक, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केंद्र, द्वारा सबको धन्यवाद के साथ हुआ।

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केंद्र, शिमला

कार्यशाला

दिनांक 30.03.2021 को हिंदी कार्यशाला का आयोजन इस केंद्र तथा राष्ट्रीय पादप आनुवंशिकी संसाधन बयूरो, क्षेत्रीय केंद्र, शिमला के साथ संयुक्त रूप से केंद्र के अमरतारा स्थित कार्यालय पर किया गया। इस कार्यशाला के मुख्य अतिथि इस केंद्र के अध्यक्ष डॉ. कल्लोल कुमार प्रामाणिक ने इसकी शुरूआत की। कार्यशाला में लगभग 20 अधिकारियों/कर्मचारियों ने हिस्सा लिया तथा राजभाषा में काम करने के अपने-अपने अनुभव बांटे तथा हिंदी में कामकाज के सरल तरीके बताए गए। कार्यशाला का समापन डॉ. मधु पटियाल, वैज्ञानिक के धन्यवाद ज्ञापन के बाद हुआ।

त्योहार साल की गति के पड़ाव हैं, जहां भिन्न-भिन्न मनोरंजन हैं, भिन्न-भिन्न आनंद हैं, भिन्न-भिन्न क्रीडास्थल हैं

- बरुआ

प्रकृति, समय और धैर्य ये तीन हर दर्द की दवा हैं।

- अज्ञात

जीवन की पहली गुरू --- माँ

(संस्मरण)

कुछ दिनों पहले की बात है। हमारे कार्यालय में कुछ निर्माण कार्य चल रहा था। मजदूर लोगों में एक औरत भी थी जिसके साथ 3-4 साल का एक छोटा बच्चा था। मां जैसे जैसे सीमेंट घोलती, झाड़ू लगाती बच्चा भी उसे देख कर वैसे ही करने की कोशिश कर रहा था। मां ने उसे रोका या टोका नहीं बल्कि झाड़ू लगाने पर बच्चे को शाबाशी भी देते जा रही थी। मैं भी मुस्कुरा कर अपने केबिन में आ गयी।

भोजन अवकाश के दौरान जब बाहर निकली तो वो अभी भी काम में लगी थी। मैंने उनसे कहा, "भोजन का समय हो गया है, खा लीजिए फिर काम करिएगा"... उन्होंने मुस्कुरा कर हां में सिर हिलाया।

बच्चे और मां के कपड़े मिट्टी में सने थे। मैंने मन में सोचा कि अब ये लोग ऐसे ही खाने बैठ जाएंगे फिर बच्चे को तरह तरह की बीमारी हो जाएगी आदि आदि। मेरे देखते-देखते वह मां बच्चे को लेकर प्रसाधन की ओर बढ़ी, बच्चे का और खुद का हाथ मुंह भली प्रकार धोया... बच्चे की शर्ट बदली और अपना खाने का डिब्बा लेकर हॉल में लगी मेज पर लगा लिया। सलीके से बच्चे को कुर्सी पर बिठाया और दोनों मां बेटा भोजन करने लगे।

मैं यह सब खड़े होकर देख रही थी जब उस अशिक्षित सी दिखने वाली महिला ने कहा, "मैडम जी, अभी से सिखा रही हूं। स्कूल भेजने से पहले तो मुझे ही इसकी टीचर बनना पड़ेगा ना!" मैंने कहा, "जी बिल्कुल, स्कूल भेजने के बाद भी जो आप सिखाएंगी वो और कोई नहीं सिखा सकता।" वह मुस्कुरा उठी। सच कहूं तो पहले आभास में मुझे उन मां बेटे पर तरस ही आया था जैसा कि अमूमन मजदूरों की अवस्था देख कर आता है। मुझे लगा कि ये मैले गंदे तरीके से रहते हैं, बच्चों को क्या सिखाएंगे... फिर बच्चे बीमारी आदि से ग्रसित हो कभी कुछ विशेष नहीं कर पाएंगे। पर उस महिला ने सिद्ध कर दिया कि एक मां की ज़िम्मेदारी सिर्फ नैतिक मूल्य और जीवन जीने की कला सिखाने तक ही नहीं, स्वास्थ्य और साफ सफाई जैसे मूलभूत किंतु अमूल्य गुणों को सिखाने में भी है। उस महिला ने न सिर्फ ये बात समझी बल्कि अमल में लाई कि वह अपने बच्चे की प्रथम गुरु है और इस नाते बच्चे के विकास से जुड़ी हर छोटी बड़ी बात उसे खुद ही सीखनी और सिखानी पड़ेगी।

इस घटना से मुझे दो बातों का एहसास हुआ - एक तो यह कि किसी को देखते ही उसके बारे में कोई धारणा नहीं बनानी चाहिए और दूसरा कि एक मां जीवन बीज के अंकुरण समय से ही गुरु का रूप धर लेती है और समय समय पर अपने सामर्थ्य अनुसार बच्चे को उसके स्वर्णिम भविष्य की ओर अग्रसर करती जाती है।

- कृति गुप्ता
ओ.एम.वी अनुभाग

संस्कार

हर ओर गूँज रही चीत्कार
हर ओर है यही हाहाकार
नारी अबला की वही कथा
कई सदियों से स्थिति यथा
छल से, बल से है सदा लुटी
लड़ लड़ अपनों से ही टूटी
अस्मत से भी धो बैठे हाथ
तो काम ना आए कोई साथ
कब तक उसको सिखाओगे
संस्कार के पाठ पढ़ाओगे ?
तलवार, कटारें उसको दोगे
पुरुषों से दूरी बढ़वाओगे?
कभी सोचा है जड़ को काटें?
कुछ सीख बेटों को भी बांटें?
उन पर भी रखें कड़ी नज़र
साँझ ढले तो हों घर के अंदर
बेटों की रूह अब साफ करें
एक फब्ती भी ना माफ करें
ये मन के रोगियों का दल है
इन्हें फांसी देना क्या हल है?
आंदोलन अब एक चला डालें
हर लड़के को अब बतला डालें
नारी का तन तेरी जागीर नहीं
"ना" उसकी ना है... "हाँ" नहीं
तेरा पौरुष कहाँ तन के बल में?
तेरी शक्ति तो नारी के आँचल में
जब तक मन का मैल न जाएगा
सड़ता समाज सुधर न पाएगा !!
हम बेटियां बस यूँ ही ना खो देते
अगर बेटों में भी संस्कार बो देते !!

- कृति गुप्ता
ओ.एम.वी अनुभाग

बाधाएं व्यक्ति की परीक्षा होती हैं। उनसे उत्साह बढ़ना चाहिए, मंद नहीं पड़ना चाहिए।
- यशपाल

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

प्रशस्ति-पत्र

राजर्षि टंडन राजभाषा पुरस्कार

वर्ष 2019-20 के दौरान सरकारी कामकाज में हिन्दी के प्रयोग में उल्लेखनीय योगदान के लिए भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली को बड़े संस्थानों की श्रेणी में प्रथम पुरस्कार से सम्मानित किया जाता है।

सीमा चोपड़ा

(सीमा चोपड़ा)
निदेशक (राजभाषा)

त्रि. महापात्र

महानिदेशक
(भा.कृ.अनु.प.)

दिनांक: 16 जुलाई, 2021
नई दिल्ली

प्रो. एम एस स्वामीनाथन पुस्तकालय
Prof, M S SWAMINATHAN LIBRARY